

अब और आज

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

ॐ

अब और आज

प्रवचन

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

संकलन

डॉ० लीना ग्रोवर
(अर्थशास्त्र)

सम्पादन

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो. : 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

प्रथम संस्करण :
समाराधन महोत्सव 2052, 19 नवम्बर 1995
द्वितीय संस्करण : 1100
आराधन महोत्सव 2015

●

मूल्य : रु. 20/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम, वाराणसी - 221001
फोन : (0542) 2392337

ॐ

अब और आज

अनुक्रम

क्र.सं.	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
१	अब और आज (१)	५
	अब और आज (२)	१९
२	समत्वका महत्त्व	४०
३	सुखकी चाह	५३
४	अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः	६०
५	स्वधर्मे निधनं श्रेयः	७१
६	तीर्थयात्रा	८२
७	भक्तिकी महिमा	८९
८	आराधना	९२

आभार

इस पुस्तिकाके प्रकाशनमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया है महाराजश्रीके परमप्रिय कृपापात्र श्री किरण ठक्करजीने। एतदर्थ हम आभारी हैं।

–ट्रस्टी

–सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

मुम्बई/वृन्दावन

अब और आज
(१)

नारायण! नारायण !! नारायण !!! नारायण !!!!

मैं पहले क्या था? चोर अथवा साहूकार? यदि मैं पहले चोर था; तो चोर था, लेकिन अब मुझे उसकी सजा नहीं मिलेगी। यदि मैं पहले साहूकार था, तो साहूकार था; लेकिन अब मुझे उसका पुरस्कार नहीं मिलेगा। इसलिए अब मुझे यह जाननेसे कोई लाभ नहीं है कि पहले मैं चोर था अथवा साहूकार था? है कि नहीं? इसी प्रकार मैं पूर्व जन्ममें क्या था? मैं जन्मके पहले क्या था? यह सब जानकारी बिलकुल बेकार है। अतः मुझे यह सब जाननेकी कोई जरूरत नहीं है।

अच्छा देखो! हमें यह मालूम है कि पहले हम क्या थे? हमें यह भी मालूम है कि आगे हम क्या होंगे? आओ, आपको भी इस जानकारीका रहस्य बतायें।

एक बारकी बात है—बम्बईमें किसी सेठके यहाँ चोरी हो गयी थी। चोरी होनेपर वह हमारे पास आया था। उसने हमको बताया—'महाराजश्री! मेरे घरपर (income tax paid) आयकर विभागकी ओरसे छापेका खतरा था। अतएव, मैंने अपना दो नम्बरका सारा रुपया एक (Box) डिब्बेके अन्दर भरकर अपने रुईके गोदाममें छिपा दिया था। थोड़े दिनोंके बाद जब छापा पड़नेका डर दूर हो गया, तब मैं वह बॉक्स लेनेके लिए अपने रुईके गोदाममें गया; लेकिन वहाँ कुछ भी नहीं था। अब तो मैं बहुत गहरे सोचमें पड़ गया कि क्या करूँ? माल तो बहुत तगड़ा था। अतः उसका पता लगाना भी बहुत जरूरी था। मैंने पुलिसको सूचना दी। पुलिस आयी। कई लोगोंकी धर-पकड़ हुई। बहुत छान-बीन हुई। महाराज! कहीं कोई सुराग तक नहीं मिला। बहुत समय बीतनेके बाद, अन्तमें जाकर एक व्यक्तिके

घरमें एक ऐसी कमीज मिली, जिसमें रुई लगी हुई थी। उसकी कमीजपर लगे हुए रुईके रेशोंके अनुमानसे पुलिस उसके गाँवके घरपर पहुँची। वह कहीं बहुत दूरका था। उत्तर प्रदेश अथवा बिहारका था। उसके घरपर जाकर मेरा पूरा-पूरा माल पकड़ लिया।'

नारायण! आप सोच रहे होंगे कि महाराजश्री रहस्यकी बात बताते-बताते बम्बईके सेठके मालकी चोरी और उसके रुईके गोदामकी बात कैसे बताने लगे? है न ! देखो, जो आदमी रुईके गोदाममें-से निकलता है, उसके शरीरमें—वस्त्रमें रुईके रेशे लगे रहते हैं। जो व्यक्ति जहाँसे आता है, वहाँकी पहचान अपने साथ लेकर ही आता है। उसके शरीरमें-से वैसी तन्मात्राएँ निकलती हैं। वह अपनेको छिपा नहीं सकता है। महापुरुष देखते ही पहचान जाते हैं कि यह व्यक्ति कहाँसे आया है? कहाँ जायेगा? किस पथसे अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण करेगा? नारायण, सीधी-सी बात है। जो व्यक्ति स्वर्गमें-से आता है, उसका मन बड़ा प्रसन्न-प्रसन्न रहता है। जो व्यक्ति नरकमें-से आता है, वह चिड़-चिड़ा-

सा, कुढ़ा-कुढ़ा-सा रहता है। उसको बात-बातमें गुस्सा आ जाता है। उसकी आँखें लाल—लाल हो जाती हैं। भौंहें टेढ़ी हो जाती हैं। जबानसे अंट-संट निकलने लगता है। वह चाहे जहाँ-जब-जिस किसीपर बेमतलब बरस पड़ता है। नरकसे आये हुए व्यक्तिकी यह पहचान होती है कि उसके दिलमें एक कुफ्त इकट्ठी रहती है—एक गुब्ज रहता है। ('कुफ्त' और 'गुब्ज' ये दोनों ही शब्द उर्दूके हैं)। असलमें नरकमें आदमी इतना पिटता है, इतना दुःख भोगता है कि यहाँ आनेपर भी वह मन-ही-मन गुरमुसाता रहता है ('गुरमुसाना'—हमारा देहाती शब्द है)। अच्छा, यह भी जानने योग्य है कि जो आदमी यहाँ इस जीवन में रोता रहता है, वह रोता-रोता ही नरकमें जाता है। जो आदमी यहाँ हँसता रहता है, वह हँसता-हँसता ही स्वर्गमें जाता है। अब आप अपने बारेमें यह पता लगालो कि आप कहाँसे आये हो? कहाँ जाओगे?

श्रीमद्भागवत महापुराणका श्लोक है—

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति।
भविष्येऽपि च राजेन्द्र तथा रूपं भविष्यति॥

मनुष्यका मन ही बताता है कि वह पहले क्या था? वह आगे क्या होगा? वह भविष्यमें जीवन्मुक्त होगा अथवा नहीं? यदि मनुष्य दुःख लेकर आया है; तो नरकसे आया है। यदि वह इस जीवनमें भी दुःखी होकर रहता है, तो दुःखकी जगह नरकमें ही जायेगा। यदि वह निर्मल मनकी प्रसन्नता लेकर यहाँ सुखी होकर रह रहा है, तो आगे भी सुखकी जगह स्वर्गमें ही जायेगा। यदि मनुष्यका मन बिलकुल वासनारहित है, तो ऐसा निर्वासन व्यक्ति इसी जीवनमें जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख प्राप्त करता है।

नारायण! आओ, अब आप अपने जीवनके वर्तमान कालके बारेममें भी थोड़ा-थोड़ा सोचना शुरू करो। आप स्त्री-पुरुष, पुत्र-पुत्री, धन-सम्पदा, रिश्तेदार-नातेदार इत्यादिके बारेमें बहुत सोचते हैं। है न! आप अधिकांशतः अपने जीवनके भूतकाल और भविष्यकालके बारेमें ही सोचते रहते हैं, और अपने छोटेसे जीवनका बहुमूल्य समय व्यर्थ ही गँवाते रहते हैं। है कि नहीं? यदि आप अपने चिन्तन-चर्चापर तनिक गौर करें तो आपको 'था' और 'होगा' का

प्रयोग प्रचुर मात्रामें मिलेगा। 'है' का प्रयोग तो कभी-कभी ही मिलेगा। भाई मेरे! आओ, अब धीरे-धीरे वर्तमान माने मौजूदा सेकेंड-मिनट घंटा-दिन-सप्ताह-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-वर्ष-युग-मन्वन्तर-कल्प। यदि आप अपनेको इस समय ठीक रखते हैं, तो आपका समस्त जीवन सुखमय हो जायेगा। ज्यादाकी नहीं, केवल एक मिनटकी ही माँग है हो! कहीं-कहींपर हमने देखा है कि व्यापारी लोग अपनी दूकानके प्रवेश द्वारपर ही काली तख्तीपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखकर लगाते हैं—'आज नकद कल उधार' आपने भी अवश्य देखा होगा। नारायण ! हम भी आपसे सिर्फ अब-अबकी ही बात करते हैं। अच्छा, चलो! अधिक-से अधिक केवल आज-आजकी ही बात करते हैं। हम आपसे कलकी बात तो करते ही नहीं हैं। न बीते हुए कलकी चर्चा करते हैं और न ही आगे आनेवाले कलकी। आप ध्यान दो, कि आपका हरेक मिनट कैसे बीत रहा है? आप गौर करो कि आपका प्रति घंटा कैसे बीत रहा है? आप खूब गौर करके ध्यानसे देखो कि आज सुबहसे लेकर अबतक आपका

समय कैसे व्यतीत हुआ है ? आप केवल अब यह क्षण और आज इस दिनमें रहनेका प्रयास करो। भाई मेरे! आप अपने वर्तमान जीवनमें रहनेका अभ्यास करो।

'वर्तमानेन कालेन विचरन्ति विचक्षणाः।'

समझदार लोग वर्तमान कालमें रहते हैं। यही तो उनके सुखमय जीवनका रहस्य है।

नारायण! आप अपना वर्तमान बिलकुल ठीक रखें। यदि आपका वर्तमान बिलकुल ठीक है तो आपका भूत और भविष्य भी एकदम ठीक-ठीक है। देखो! वर्तमानसे ही भूत बनता है। भूत माने विगत—बीता हुआ। इस समय जो वर्तमान क्षण है, वही तो आगे वाले क्षणका विगत हो जायेगा। अच्छा, फिर जो वर्तमान क्षण होगा, वह अगले क्षणमें भूत हो जायेगा। ध्यानमें आया ? हाँ! इस प्रकार, यदि आपका वर्तमान क्षण बढ़िया बीतेगा, तो आपका बीता हुआ क्षण भी सब-का-सब बढ़िया बीतेगा। बढ़िया-बढ़िया-बढ़िया-बढ़ियाकी एक लाइन कतार (Line) लग जायेगी। यदि आप आगामी क्षणकी ओर देखोगे, तो भी बढ़िया-

बढ़िया-बढ़िया-बढ़ियाकी पंक्ति (Que) लग जायेगी। आगे आनेवाले क्षणको दूसरा कोई रास्ता नहीं है। भला बताओ! भावी क्षणका क्या रास्ता है? जब भविष्य आवेगा तब वर्तमान होकर ही तो आवेगा। अतः आपके वर्तमानमें जो शर्करा (Sugar) है, वह आनेवाले भविष्यमें बिलकुल लिपट जायेगी। आपका भविष्य मीठा हो जायेगा। कुनैनकी गोली भी आपके लिए शक्कर बन जायेगी। यदि आपका वर्तमान बिल्कुल सुखमय है, तो भूत और भविष्यमें दुःख देनेका सामर्थ्य ही नहीं रहेगा। नारायण! यदि आपका वर्तमान बिलकुल सन्तुष्ट है; यदि इस समय आपके मनमें अपने बारेमें कोई ग्लानि नहीं है कि पहले मैंने ऐसा क्यों किया? ऐसा क्यों नहीं किया? और यदि इस समय आपके हृदयमें कोई चाह नहीं है कि आगे हमको क्या-क्या मिले? क्या-क्या नहीं मिले? तो आप विश्वास करो कि आपका समस्त जीवन-काल अत्यन्त सुख-शान्तिसे व्यतीत होगा।

देखो! एक लड़की है वह हमारे पास आती है। उसका ब्याह होना पक्का हुआ है। उसको अबतक यह मालूम नहीं

है कि उसका ब्याह कहाँ होगा? हमको भी मालूम नहीं हैं। लेकिन, ब्याह तो पक्का ही है। हमने उस बेटीसे कहा—'अब तो तुम्हारा ब्याह हो जायेगा। तुम ससुराल चली जाओगी।' नारायण! वह तो रोने लगी। उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू गिरने लगे। हमने पूछा—'अरे! तुम रोती क्यों हो? आजकल तो ब्याहका नाम सुनकर लड़कियाँ खुश होती हैं।' वह बोली—'महाराजश्री! मुझे तो बड़ी चिन्ता है।' हमने पूछा—'तुम्हें क्या चिन्ता है?' वह अवरुद्ध कण्ठसे बोली—'महाराजश्री! जहाँ मेरा ब्याह होगा, वे लोग मुझे सत्संगमें आने देंगे कि नहीं?' भगवान्‌का नाम लेने देंगे कि नहीं?' अब आप देखो! यह व्यर्थ चिन्ता है या नहीं? उस लड़कीको यह तो मालूम नहीं है कि उसका ब्याह कहाँ होगा और उसे अभीसे यह चिन्ता लग गयी है कि आगे क्या होगा? भविष्यके बारेमें जिज्ञासा है। आप जानते ही हैं कि अपनी-अपनी इच्छा-रुचिके अनुसार, रति-मतिके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिकी गति होती है। अब-जब उसे भविष्यकी चिन्ता सता रही है, तब वह ज्योतिषीसे

पूछेगी! छायाशास्त्रीके पास जायेगी। है न! नारायण, आजकलके बच्चोंको अपनी हस्तरेखाओंके माध्यमसे भविष्य जाननेकी बड़ी प्रबल इच्छा होती है। आजकल यह बच्चोंका शौक-मौजका साधन बन गया है। घर-घरमें (Palmis-try) हस्तरेखा विज्ञानकी किताबें देखनेमें आती हैं। यदि उनसे पूछो कि क्या पढ़ रहे हो, तो कहेंगे कि महाराज! यह बड़ी ही (Intesting) दिलचस्प किताब है। बड़ा मजेदार (Time-Pass) कालक्षेप है। हमने देखा कि बच्चे अपने कोर्स (Course) की किताबोंसे भी अधिक महत्त्वबुद्धि पूर्वक ज्योतिषशास्त्र और छायाशास्त्रकी पुस्तकोंको पढ़ते हैं और इन विषयोंके जानकोरोंके पास जाकर कई-कई घण्टे बैठे रहते हैं। अब भला बताओ! यदि इन लोगोंका दिल-दिमाग भूत-भविष्यके चिन्तनमें व्यस्त रहता है, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? हमारे कई लोग ज्योतिषियों, छायाशास्त्रियोंसे अपना भूत-भविष्य पूछकर आये और वह बिलकुल सोलहो आने गलत निकला। देखो भाई! यदि यहाँ कोई ज्योतिषी-छायाशास्त्री होवें, तो बुरा न मानें। है

न! बातको भला-बुरा मत मानो अपितु बातको जानो। हम जिस अभिप्रायसे जो बात कह रहे हैं, उसको उसी परिवेशमें सही-सही समझो। हमारा काम सत्यको समझना है। जो सत्यको समझता है, वह सुख-शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत करता है।

हम तो कभी किसी छायाशास्त्रीके पास नहीं गये। हाँ, अनेक वर्षों पूर्व एक बार भृगुसंहितावालेके पास गये थे। आप विश्वास करो कि उसने उस दिनके बादका जो कुछ भी बताया था, वह सब बिलकुल झूठा था। अच्छा, सुनो! एक बार हमारे पास एक ज्योतिषी आया । इस बातको अनेकानेक वर्ष बीत गये हैं। उसने हमें बताया कि जिस घरमें हमारा जन्म हुआ था, वह पश्चिममुखी था। जिस घरमें हमारा ब्याह हुआ था, उसका मुँह पूर्वकी ओर था। हमारे घरमें इतने लोग थे और उनका स्वभाव ऐसे-ऐसे था। इत्यादि-इत्यादि। उसने और भी बहुत कुछ बताया। हमने उसको कहा—'देखो, यह सब तो ठीक है। तुमने हमें हमारे जीवनके भूत कालकी अनेक बातें बतायीं। अब तुम हमें हमारे आने

वाले कलकी बात बताओ। तुम एक कागजपर यह लिखो कि हम कलके दिन सुबहसे शामतक क्या करेंगे? उस कागजको लिफाफेमें बन्द कर दो! यदि तुम्हारी बात सही निकली, तो फिर तुम जो कहोगे, हम वही करनेको तैयार हैं। हम तुमसे छह महीने बादकी बात नहीं पूछते हैं। हम छह बरस बादकी बात भी नहीं पूछते हैं। हम यह भी नहीं पूछते हैं कि हम कब मरेंगे? कहाँ मरेंगे? कैसे मरेंगे? हम तो तुमसे केवल इतना ही जानना चाहते हैं कि कल क्या-क्या काम करेंगे? नारायण! अब तो एकदम ही नकार गया। हमसे स्पष्टम्-स्पष्टम् बोला—'महाराज! मैं यह लिखकर तो नहीं रख सकता हूँ।' वह जानता ही नहीं था। उसको आता ही नहीं था। वह तो चला गया। अहा! पिछले कलकी बात नहीं पूछ रहे हैं। केवल अगले कलकी बात कागजपर लिखकर एक लिफाफेमें बन्द करके रख सकते हो? नहीं कर सकते हो। यदि यहाँ कोई ज्योतिषी होगा, तो बुरा मानेगा। देखो भाई! बुरा मत मानना। हमारे कथनके अभिप्रायको ध्यानमें लेना।

'क्षणार्धं नैव जानामि, विधाता किं विधास्यसि।'

अतएव **'भविष्यं नैव चिन्तयेत्'**

एक बार अपने एक अत्यन्त प्रिय मित्रके आग्रहपर हम और दादा बी० डी० ऋषिके यहाँ गये। उन दिनों वह हिन्दुस्तानमें परलोक विद्याके सबसे बड़ा आचार्य माना जाता था। दादा चक्रमें बैठा था और हम अलगसे बैठे थे। उसने हमसे कहा—'मैंने उड़िया बाबाजीको बुलाया है।' हमने कहा—'अच्छा! ठीक है। हम मानते हैं कि श्रीउड़िया बाबाजी महाराज आये हैं। परन्तु हमको कैसे मालूम पड़े कि वह आये हैं। हम तो मात्र इतना ही चाहते हैं कि बाबा उड़िया लिपिमें अपना हस्ताक्षर कर दें।' नारायण! अब तो वह सकपकाने लगा। बात बनाने लगा। असलमें, वहाँ बैठे हमं लोगोंमें-से किसीको भी उड़िया लिपि बिलकुल भी नहीं आती थी। यदि हम लोगोंमें-से किसी एकको भी उड़िया लिपिकी जानकारी होती, तो वह अवश्यमेव हस्ताक्षर करवा देता! जो बात वहाँ उपस्थित लोगोंमें-से किसी एकको भी मालूम रहती है, परलोक-विद्याका आचार्य अपनी प्रबल

मानसिक शक्तिके द्वारा उस बातको मालूम करके बता सकता है। यह सब-का-सब मानसिक शक्तिका चमत्कारिक खेल है। देखो, हम यह बात खण्डनके लिए नहीं कह रहे हैं। आप लोग भविष्यकी चिन्तासे ग्रस्त होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। है ना ! आप लोगोंको भविष्यकी चिन्तासे मुक्त करनेके लिए, इतस्ततः भटकने-से बचानेके लिए यह बात बात बोल रहे हैं। आपलोग हमारे जीवनके अनुभवको सुनकर उनसे लाभान्वित होनेका प्रयास करें।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

□

अब और आज
(२)

नारायण ! नारायण !! नारायण !!! नारायण !!!!

आप आज ठीक-ठीक रहो। आपका कल ठीक होगा। यदि आप आज ठीक नहीं हैं, तो आपका पिछला कल भी बिगड़ जायेगा। और आपका अगला कल भी बिगड़ जायेगा। आपका स्वर्ग भी बिगड़ जायेगा। बड़ा ही भयंकर नरक मिलेगा। देख लो! अब और आजकी अद्‌भुत महिमा। यदि आपका आज बिगड़ा, तो समझ लो कि आपका सब-का-सब बिगड़ गया । आप अब भली-भाँति जानते हैं कि वर्तमानकी आधार-शिलापर भूत और भविष्य टिकते हैं। यदि आपका वर्तमान ही ठीक नहीं है, तो आप निश्चित

रूपसे यह जान लो कि आपका भूत और भविष्य ठीक नहीं है। आपका समस्त जीवन ही बेठीक-अशान्त-अप्रसन्न होगा। भाई मेरे, आओ! डरो मत। बातको समझनेका प्रयत्न करो। आप केवल वर्तमानमें रहो। अब इस क्षणसे लेकर आज इस दिनतकके अपने समस्त उत्तम कर्त्तव्य कर्मोंका पूर्ण मनोयोगसे अनुष्ठान करो। देखो! भगवान् आपका मङ्गल-ही मङ्गल करेंगे।

यदि आप इस समय सुखी होते, तो भला आप आजका सुख छोड़कर कलके लिए सोचते ही क्यों? आप आजके सुखका मजा तो ले ही नहीं रहे हैं और कलके मजेकी बात सोच रहे हैं। आप बीते हुए कल अथवा आनेवाले कलके मजेकी बातके सोच-विचारमें ही अपना वर्तमान सुख नहीं ले पाते हैं। अपने भूत-भविष्यमें उलझकर वर्तमान समयको व्यर्थ ही गवाँ देते हैं। है कि नहीं? खूब गौरसे देखो! एक सच्ची बात बताते हैं। हमारे साथ एक पण्डितजी रहते थे। जब उनके सामने बढ़िया भोजनकी थाली आती थी, तब वह अपनी पत्नीकी याद करके रोते हुए कहते थे—'हाय!

हाय! अबसे पैंतीस वर्ष पहले हमारी पत्नी मर गयी। वह कितना बढ़िया भोजन कराती थी। अब वह स्वादिष्ट—सुगन्धित-सुन्दर-सुपाच्य-गुणकारी-हितकारी भोजन देखनेको भी नहीं मिलता। भोजनका आनन्द तो बस उसीके साथ ही जाता रहा।' जो बीत गयी, सो बात गयी। अब ल्यो! सामने रखे बढ़िया भोजनका मजा ही चला गया। अच्छा! कभी-कभी तो वह अपने रसोइयेको ही बुला लेते थे। बहुत जोरसे पुकारते थे—'ऐ! सोहनलाल! यहाँ आओ! जब आज तुमने इतना अच्छा भोजन बनाया है, तब कल ऐसा बढ़िया भोजन क्यों नहीं बनाया था? मन लगाकर काम किया करो, रोज-रोज बढ़िया भोजन बनना चाहिए। समझे कि नहीं? एकरस होकर भोजन बनाया करो। अच्छा! अब जाओ।

नारायण! सामने रखा है बढ़िया भोजन—घीसे तरातर अरहरकी दाल, सफेद-सफेद खिला हुआ चावल, सूखी और रसवाली सब्जियाँ, मूँगकी दालके दहीबड़े, पतली-पतली-घीसे सनी मुलायम रोटी, दो मिठाइयाँ, पापड़, इत्यादि।

लेकिन अब इस भोजनका मजा तो किरकिरा हो ही गया। अच्छा! कभी-कभी तो पण्डितजी भोजन करते-करते ही रसोइयेको बुलाते—'ऐ! यहाँ आओ, सुनो! कल क्या-क्या बनेगा?'! नारायण! भोजन करना शुरू ही किया और कलकी योजना बननी भी शुरू हो गयी। कहाँसे सब्जी ले आना? कौन-कौन सी सब्जी बनाना? रोटीके आटेमें क्या-क्या डालकर कैसे-कैसे रोटी बनाना? इत्यादि-इत्यादि अत्यन्त विस्तार सहित निर्देशन होता था। पण्डितजीका मन वर्तमानमें न होनेके कारण सामने रखे-बढ़िया भोजनका मजा ही नहीं ले पाता था। वह बीते कल अथवा आनेवाले कलके विचारमें इतने मग्न हो जाते थे कि उनको पता ही नहीं चलता था कि वह अब इस समय क्या खा रहे हैं? भाई मेरे! हम लोगोंकी भी यही हालत होती है इस भूतके साथ जुड़ जाते हैं अथवा भविष्यकी कल्पनामें खो जाते हैं। वर्तमानमें रहते नहीं है। वर्तमानका सारा-का-सारा मजा यों ही किरकिराकर देते हैं। है कि नहीं? आप हमारी बातको जरा गम्भीरता पूर्वक ध्यानमें लो।

जबलपुरमें हमारे एक मित्र हैं। हैं तो चेले; लेकिन बहुत पुराने चेले—चालीस वर्षसे भी अधिक पहलेके चेले हैं, इसलिए हम उनको अपना मित्र बोलते हैं। एक दिन हमें अपने घरमें ले गये। हमारे बैठनेके लिए एक ईरानी कालीन बिछाया। अब आपको क्या बतायें? वह कालीन उनके घरमें साठ-सत्तर वर्ष पहलेसे रखा हुआ था। बिलकुल पुराना था। उसके रेशे टूट गये थे। उसमें मिट्टी लगी हुई थी। मैला था और फटा भी था। हमने अपने मित्रसे कहा—'तुम हमारे बैठनेके लिए एक कम्बल क्यों नहीं बिछा देते हो?' उन दिनोंमें भेंड़की ऊनका कम्बल छह-आठ रुपयोंमें ही मिलता होगा। वह ऊनका कम्बल ले तो आया; परन्तु उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे और अत्यन्त दुःखी कातर स्वरसे बोला—'महाराज! कभी मेरे घरमें ऐसी-ऐसी ईरानी कालीन थे कि देखते ही बनता था और आज यह स्थिति है।' हमने उससे कहा—'अरे! आज तो तुम्हारे घरमें इतना बढ़िया ऊनका कम्बल है। आज तो तुम्हारे पास इतनी बड़ी जगह है। देखो तो सही! तुम्हारा घर इतनी अधिक जमीनमें

है। तुम्हारी स्त्री इतनी अनुकूल है। तुम्हारे बच्चे इतने हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, समझदार हैं। तुम स्वयं भी स्वस्थ हो, चलते-फिरते हो, खाते-पीते हो। आज तो तुम्हारे घरमें बढ़िया-बढ़िया दाल-चावल बना है, प्याजका साग बना है (हम तो प्याज नहीं खाते हैं। वे लोग खाते हैं।) आज तुम्हारे पास रहनेको घर है, पहननेको वस्त्र है, खानेको रोटी है, जीवन-निर्वाहके लिए धन-सम्पदा है। अब तुम हो कि अपने दादाके जमानेकी चीजको याद कर रहे हो और दुःखी होकर रो-गा रहे हो।' इसीका नाम भूत लगना है, जो भूतकी बातको—बीती हुई बातको याद करके दुःखी-सुखी होता है—रोता-हँसता है, उसको भूत लगा है।

'हाँ, देखो! एक बात सुनाते हैं। एक दिन हमारे पास एक कविजी आये। वह हमारा पाँव दबाने लगे। अभी एकाध मिनट ही बीता होगा कि बोले—'महाराजश्री! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? यदि मुझे आपकी कृपासे एक लाख रुपया मिल जाये, तो मैं पचास हजार रुपया आपके श्रीचरणकमलोंमें अर्पित कर दूँगा।' हत् तेरेकी। हमने उससे

कहा—'देखो! तुम अलग बैठ जाओ और अपनी लिखी हुई बढ़िया-बढ़िया कविता सुनाओ। हम भी मजा लें और तुमको भी मजा आये। जब तुम्हारे पास कविता है, तब तुम पैसाका ख्याल क्यों करते हो?'

अच्छा! और सुनो! एक दिन हमारे पास एक सेठजी आये। हाथ जोड़कर कुर्सीपर बैठ गये। बोले—'महाराज! मेरा शरीर बहुत कमजोर हो गया है। नीचे बैठनेमें भी तकलीफ होती है। आप ऐसी कृपा करो कि मेरे शरीरमें ताकत आ जाये और मैं रोज यहाँ आकर आपके पाँव दबाया करूँ।' अरे! मेरे बाप! हमने उससे कहा—'सेठ! तेरे पास लाखों रुपया है। उसमें-से दो-पाँच हजार रुपया लाकर हमको क्यों नहीं दे देता है? हैं, तुम देनेका मजा लो और हम तुम्हारे अर्थको सार्थक करके आनन्द मनावें। अरे भाई! जब तुम्हारे पास देनेको धन है, तब तुम धनसे सेवा करके उसका सदुपयोग करो। तुम शरीरका ख्याल क्यों करते हो? नारायण! जो चीज अपने पास है, जिससे सेवा कर सकते हैं उससे तो सेवा करेंगे नहीं और सुखी होंगे

नहीं। जो चीज अपने पास नहीं है, उसके द्वारा सेवा करनेकी व्यर्थ कल्पना करेंगे और दु:खी होंगे। ऐसा विचित्र स्वभाव देखनेमें आता है। अद्भुत है। बड़ा ही विलक्षण है। बाबा! जो इस समय तुम्हारे पास है, उसको उदार हृदयसे बाँटो और खूब आनन्दमें रहो। वर्तमानका सदुपयोग करो और मस्त रहो।

हमारे पास एक सज्जन आते हैं। दिल्ली निवासी हैं। अभी वह जवान हैं। उनकी उम्र ३०-३५ वर्षकी होगी। आहा! उन्होंने हमको अपनी वसीयत लिखी है। आपको बतायें कि क्या लिखा है? सुनो! उन्होंने लिखा है कि "जब मैं मर जाऊँ, तब मेरी सारी-की-सारी सम्पत्ति श्रीस्वामीजी महाराजजीको ही मिले।' हमने उससे कहा—'भले मानुस! इस समय क्या हो रहा है?' वह बोले—'स्वामीजी! मैंने आपको अपना सब कुछ दे दिया है। मेरा सब कुछ आपका ही तो है। जब मैं मर जाऊँगा, तब सब आपको ही मिल जायेगा।' बाप-रे-बाप! यह है संसार। है न! स्वयं जीवित हैं, तो देनेका दिल ही नहीं करता है। यह भी नहीं कि पाँच

रुपया देकर कुछ सेवा करते हों। हाँ! मरनेके बाद देनेकी व्यवस्था कर दी है। अब यह तो भगवान् ही जानता है कि पहले किसका शरीर छूटेगा? अब क्या कहें? यह मनुष्यकी बेवकूफीकी हद है। हाँ! आप लोग तो ऐसे नहीं होंगे। हम जानते हैं। आप लोग तो बहुत समझदार हैं—बुद्धिमान हैं। जो मूर्ख हैं, वे अनुपलब्ध वस्तुके बारेमें कल्पना करते हैं और चिन्ता-ग्रस्त रहते हैं। जो नासमझ—बेवकूफ हैं, वे उपलब्ध वस्तुका सुख नहीं लेते हैं। न स्वयं उपभोग करते हैं और न ही दूसरोंके लिए उसका सदुपयोग करते हैं। आप सच समझो—जो बीत गया, वह तो लौटकर आवेगा नहीं। जो वस्तु अपने पास नहीं है, वह तो मनोराज्यकी एक वस्तु है। आप उस कल्पित वस्तुके द्वारा न अपनेको सुखी कर सकते हैं और न ही किसी दूसरेको। नारायण! जो इस समय आपके पास मौजूद है, उस वस्तुके द्वारा आप स्वयं भी सुखी हों और दूसरोंको भी सुखी करें। ईश्वरीय सृष्टिमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं है, जिसके पास कोई-न-कोई गुण न हो। यह हो सकता है कि वह अपने गुणसे अनभिज्ञ हो

और दूसरोके गुणको देखकर स्वयंमें हीनताका अनुभव करके दुःखी हो। कोयलकी दृष्टि मोरकी सुन्दरतापर है और अपने काले रंगसे दुःखी है। मोरकी नजर कोयलकी मधुर आवाजपर लुब्ध है और अपने बेसुरे गलेसे परेशान होकर दुःखी है। जानकार-समझदार-अनुभवी व्यक्ति कोयलकी मीठी आवाजका और मोरके मधुर-मोहक नृत्यका सदुपयोग कराता है और अपने आस-पासके वातावरणको आनन्तमें भर देता है। आप अपने आपको पहचानिये अपनी योग्यता और अधिकारको देखिये। स्वयं निरभिमान रहकर, निष्काम भावसे, अपनी योग्यताको पूर्णरूपेण विकसित कीजिये। सुखी रहें और सुखी रखें—यही मानव-जीवनका सार-सर्वस्व है। यह तभी सम्भव होगा, जब आप वर्तमानमें रहेंगे। जीवनको क्षण-प्रति-क्षण और दिन-प्रति-दिन जीयेंगे।

अभी तीन-चार वर्षोंकी बात है। हमारे ट्रस्टके एक बड़े-बूढ़े व्यक्तिने, जिनकी उम्र अब इस सालके दिसम्बर महीनेमें सौ वर्षकी होनेवाली है, हमसे पूछे बिना ही ट्रस्टका दो लाख रुपया सात वर्षके लिए रखवा दिया। जब हम

कहीं बाहरसे वृन्दावनमें वापिस लौटे, तब हमें मालूम पड़ा। हमने उनसे पूछा—बाबू! क्या बात है? उन्होंने कहा—महाराजश्री! एक नवीन योजनाके अन्तर्गत यह जमा की गयी धनराशि सात वर्षमें दुगुनी हो जायेगी। इसलिए आपसे पूछे बिना ही मैंने ट्रस्टका दो लाख रुपया सात वर्षके लिए रखवा दिया है। हमने कहा—'बाबू! ठीक है कि यह रुपया सात वर्षमें दुगुना हो जायेगा; लेकिन, हमको तो उसका मजा नहीं आवेगा। है कि नहीं? अरे! तुम अभी खर्च करो न! अभी खर्च करके हम उसका मजा तो लें। भला बताओ! सात वर्ष बाद प्राप्त हुए चार लाखसे हमारा क्या रिश्ता होगा? क्या पता उस समय हम इस धराधामपर होंगे भी या नहीं? तुम सात वर्ष बादके लिए मत रखो। Cancel (रद्द) करवा दो।' हमने कहकर Cancel करवा दिया हो! बैंक वाले भी मान गये। बाबा! अबसे सात वर्ष बाद दुगुना रुपया लेकर हम क्या करेंगे? हम लोग सपनेमें उड़ते हैं। कहते हैं—'महाराज! सब आपका है। आप ही सबके मालिक हैं।' यदि पूछो—'भाई मेरे! इस समय क्या है? तो केवल ठनठनपाल!

अच्छा! एक बात और भी है। कहते हैं—'महाराज! व्यवहार भी तो चलाना पड़ता है। अब गृहस्थी लेकर बैठे हैं, उसको भी देखना पड़ता है। आपकी दृष्टि तो परमार्थकी है। ठोस जगत्का सत्य तो व्यवहार है न! व्यवहारके मूलमें अर्थ-सम्पदा है; रुपये-पैसेके बिना तो व्यवहार नहीं होता और व्यवहारके बिना संसारका काम नहीं चलता।' अब क्यों! हमको एकदम निठल्ला बुद्धू समझकर व्यवहारकी शिक्षा देते हैं। अपने हृदयमें सोचते हैं, कि ब्रह्मकी बात तो गुरुजी ठीक-ठीक समझते हैं; परन्तु, संसारके व्यवहारके बारेमें बेचारे क्या जानें? नारायण! यह मनःस्थिति है। धन कमाना और संग्रह करना तो खूब अच्छी तरहसे जानते हैं; लेकिन धन खर्च करके उसके सदुपयोगका मजा लेनेकी विद्या नहीं जानते हैं। भाई मेरे! अर्थका प्रवाह बहने दो अन्यथा आपका कठोर परिश्रमसे अर्जित अर्थ अनर्थका हेतु बन सकता है। भविष्यकी चिन्ता करके पैसा-पैसा जोड़नेमें ही अपनी जिन्दगी पूरी मत करो। वर्तमानमें रहकर अर्थ वितरणका आनन्द भी लो। धन बाँटनेका मजा लो। खिलाकर

खाओ। आवश्यकता पड़नेपर खिलाकर स्वयं भूखे रह जाओ। भाई मेरे! जो मजा खिलाकर भूखे रहनेमें है, वह खिलाकर खानेमें भी नहीं है। आप स्वयं इस बातका अनुभव करो। देखो! आपका जीवन आनन्द-ही-आनन्द व्यतीत होगा।

हमारे पास तीन-चार आदमी लगभग चालीस-पैंतालिस वर्षोंसे निश्चित रूपसे आते हैं। हमारे पास आनेके बाद ही उनका ब्याह हुआ, पत्नी आयी, पुत्र हुआ, पुत्रका ब्याह हुआ, पुत्रवधू आयी, पौत्र हुआ। पूरा घर-परिवार बना और फूला-फला। घरमें प्रचुर मात्रामें धन-सम्पदा है, वैभव-ऐश्वर्य है। सभी प्रकारकी सुख-सुविधा है। आजतक कभी कोई भूखा नहीं रहा है। रोज खानेको रोटी मिली है। पहननेको कपड़ा मिला है। कभी किसी चीजकी कोई प्रकारकी कमी नहीं रही है। परन्तु, जब भी वह हमें पत्र लिखते हैं, तब केवल अपने दुःखका ही वर्णन करते हैं कि हमें यह दुःख है, हमें वह दुःख है, इत्यादि। वह हर वक्त खुदाके काममें खोट ही बताते रहते हैं। ईश्वरके काममें दोष निकालना ही उनका एकमात्र काम है। जब देखो! तब यही लिखते हैं कि

ईश्वरने हमको यह नहीं दिया, वह नहीं दिया, इत्यादि। ईश्वरने अबतक जो दिया उसका जिक्र ही नहीं है। आजतक जो सुख मिला है, उसका मजा ही नहीं लेते हैं। हमने उनका नाम ही 'शिकायतीराम' रख दिया है। ईमानदारीसे आत्म-निरीक्षण करें, तो ईश्वरके बारेमें हम लोग ऐसे ही सोचते हैं हो! जो दिया है, उसका मजा लेते नहीं हैं। जो इस समय नहीं दिया है, उसके बारेमें लगातार शिकायत करते रहते हैं। वस्तुतः अपनी दृष्टिका ही दोष है। यदि हमारी दृष्टि वर्तमानमें ही केन्द्रित रहे, तो हमारा हृदय ईश्वर-प्रदत्त प्रचुर सुख-सुविधाओंको प्राप्तकर संतुष्ट रहे। लेकिन, हमारी दृष्टि तो भविष्यकी ओर लगी हुई है। अतः हृदय आकांक्षाओं-कामानाओंकी पूर्ति हेतु हम मनोराज्यमें विचरण करते हैं। मधुर-मनोहर कल्पनाओंकी ऊँची-ऊँची उड़ाने भरते हैं। परिणामस्वरूप वर्तमानमें दुःख-दर्द-बेचैनी-असंतोष रहता है। ईश्वरकी कृपा-अनुग्रहके प्रति कृतज्ञ न होकर शिकायत करते हैं। नारायण! प्रेममें शिकवे-शिकायतें हों, तो वतरसका मजा आता है। परन्तु हमारी शिकायतें तो

असंतोष-जन्य होती हैं और साथ-ही-साथ असंतोषजनक भी। है कि नहीं? भाई मेरे! वर्तमानमें रहो। अपनी स्थितिमें सन्तुष्ट रहो। मस्त रहो। निश्चिन्त रहो। ईश्वरका धन्यवाद करो! क्षण-प्रति-क्षण प्रसन्न मनसे ईश्वरको कहो—

"राजी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा है।
यहाँ यों भी वाह-वाह है, वहाँ यों भी वाह-वाह है।"

एक बार हम बम्बईमें अपने एक भगतके मकानमें ठहरे हुए थे। रातके करीब आठ बजे होंगे। हमारा भगत एकदम घबराया हुआ आया और रोता बोला—'महाराज! मेरी दूकानके क्षेत्रमें आग लग गयी है अब तो मेरा सब माल जलकर भस्म हो जायेगा। मेरा तो सर्वस्व समाप्त हो गया।' हमने पूछा—'तुम्हारी दूकानका बीमा हुआ है?' भगत बोला 'महाराज! अभी हाल ही-में तो नयी दूकान खोली थी। अभीतक तो बीमा नहीं कराया था।' अब यह सब समाचार सुनकर हमको तो बड़ी फिकर हुई। हम जिसके घरमें ठहरे हैं, उसकी दुकानके क्षेत्रमें आग लग गयी है; अब उसका सब माल जल जायेगा; और वह सर्वथा

कंगाल हो जायेगा-यह सब सोच-सोचकर हमको तो रात भर नींद नहीं आयी। सुबह हुई। नौ बजेतक उन लोगोंने हमको कोई खबर ही नहीं दी। हमने अपने भगतको बुलवा भेजा। जब वह हमारे पास आया, तब एकदम स्वस्थ शान्त-प्रसन्न था। हमने पूछा-भाई! रातको तुमने आग लगनेकी खबर दी थी और अबतक कोई समाचार ही नहीं दिया है।' वह बोला-'महाराज! वह आग तो दूसरी तरफ चली गयी थी। हमारी दुकानकी तरफ आयी ही नहीं। इसलिए, आपको रातको फिर कोई खबर नहीं दी।'

नारायण! यह है संसारका स्वभाव! अरे भलेमानुस! जब आग लगनेकी खबर हमको दी, तब दूकान बचनेकी खबर भी तो देनी चाहिए थी। दूकान बचनेकी खबर देते समय तुम्हें रातका समय ध्यानमें आया। हमारी नींद खराब होनेका और परेशानीका भी विचार आया। धन्य हो बाबा! तुम्हारे विचारके बारेमें क्या कहना? अरे! सिर्फ दुःख-ही-दुःख क्यों बताते हो? क्या तुम इतना भी नहीं जानते हो कि दुःखद समाचारको देनेमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिए और

सुखद समाचार यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र देना चाहिए? सुखको बाँटो और दुःखको सहो। जब देखो, तब रोते-चिल्लाते रहते हो कि ईश्वरने मुझे यह दुःख दिया-वह दुःख दिया है। बड़ी विचित्र है तुम्हारी यह मनःस्थिति। ईश्वर तुम्हें जो सुख देता है, वह क्यों नहीं बताते हो? अपनी रति-मति-गति-स्थितिका सही-सही निरीक्षण-परीक्षण करो। देखो! ईश्वर जो करता है, वही हमारे लिए हितकारी है-कल्याणकारी है-मंगलकारी है। ईश्वरने हमें (जो दिया है) जितना दिया है, वह हमारे जीनेके लिए, हमारी अक्ल ठीक रखनेके लिए, हमें सुखी रखनेके लिए पर्याप्त है। जब हमारी नजर ईश्वर द्वारा प्राप्त वस्तुको नहीं देखती और अप्राप्त वस्तुके लिए भटकती है, तब हम उस महादाता प्रभुका अपमान कर बैठते हैं। इस समय हमारे जीवनमें उस ज्ञानस्वरूप परमात्माकी जो जगमग ज्योति है-जो चमक है, जो झिल-मिलाहट है, उसका अपमान कर बैठते हैं। इस समय हमारे जीवनमें उस परमानन्दस्वरूप भगवान्‌का जो उल्लास है-जो विलास है, उसका तिरस्कार कर बैठते

हैं। ईश्वरका अनादर करना तो हिमाकत है—दुस्साहस है। तिरस्कार करनेका परिणाम है—दुःख। हाँ! हिम्मत है—साहस है, तो आओ! सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वरकी रायमें अपनी राय मिला दो। जहाँ ईश्वरसे आपका मतभेद मिटा, वहाँ सुखी जीवनका प्रारम्भ हुआ।

यह तो सब कहते हैं कि ईश्वर हमारे साथ है। ठीक है। बहुत बढ़िया बात है। परन्तु, भाई मेरे! यह तो बताओ कि ईश्वर किस रूपमें आपके साथ है? ईश्वर सत्-स्वरूप है। अजर-अमर है। है न! अच्छा! जब ईश्वर आपके साथ है, तब आप अजर-अमर क्यों नहीं हैं? आप निर्भय-निर्द्वन्द्व क्यों नहीं हैं? आपको मौतका डर क्यों लगता है? जब चित्-स्वरूप ईश्वर आपके साथ है, तब आप ज्ञान-प्रकाशस्वरूप क्यों नहीं हैं? आप अज्ञानान्धकारमें क्यों भटक रहे हैं? ईश्वर परमानन्दस्वरूप है। सुख-संदोह है। आप परमानन्दस्वरूप क्यों नहीं हैं? आप दीन-हीन क्यों हैं? आप ग्लान-म्लान क्यों हैं? आप सुख-स्वरूप क्यों नहीं हैं? आप दुःख-दर्दसे बेचैन क्यों हैं? यह कैसा आश्चर्य है

कि सच्चिदानन्दस्वरूप-ईश्वर आपके साथ है, और आप भयभीत-बेवकूफ और दुःखी हैं? यह तो सचमुच बड़ी-भारी विडम्बना है। नारायण! *'परमानन्दस्वरूप तूँ, नहीं तुझमें दुःख लेश।'* यह परमसत्य है। यदि आप अपने जीवनमें सुख-शान्ति-सन्तोष-आनन्द-मस्तीकी अनुभूति चाहते हैं, तो आप भूत-भविष्यमें न उलझकर केवल वर्तमानमें रहो। अब इस क्षणसे लेकर आज इस दिनतकके आपके जीवनमें जो उत्तम कर्त्तव्यकर्म सुनिश्चित हैं, उनको पूर्ण मनोयोगसे सुव्यवस्थित ढंगसे करनेका भरसक प्रयत्न करो। ईश्वर जो करता है, जो देता है, उसीको अपने हित-कल्याण-मंगलका स्वरूप स्वीकार करके खूब आनन्दमें रहो। सदा-सर्वदा-सर्वथा ईश्वरसे समझौता करके हमेशा खुश रहो, सुखी रहो, प्रसन्न रहो।

देखो! हम आप लोगोंको यह बात मुफ्तमें बता रहे हैं, इसलिए आपको यह बात जल्दी जमेगी नहीं। हाँ! यदि हम हिमालयके किसी एक कोनेमें होते और आप हमारा सत्संग करनेकी तीव्र जिज्ञासासे उस गुफामें आते और वह भी यदि

आप खूब सारा पैसा खर्च करके हवाई-जहाजसे या मोटरसे हमारे पास आते अथवा आप पैदल सफर करके, एकाध दिन चट्टियोंमें सोकर, दो-चार दिन भूखे-प्यासे रहकर बहुत अधिक कष्ट उठाकर हमारे पास आते और हम आपको बहुत दिनोंकी प्रतीक्षा करवानेके बाद यह बात बोलते-बताते, तो आपको हमारी यह बात पूरी जिन्दगी-पर्यन्त नहीं भूलती। मुफ्तका ज्ञान टिकता ही नहीं है। ज्ञानकी कीमत चुकानी पड़ती है। जब-तक आपके मनमें हमारे द्वारा प्राप्त ज्ञानकी कीमत चुकानेकी तैयारी नहीं होगी, तबतक आपके हृदयमें हमारा ज्ञान टिकेगा ही नहीं। आपके अन्तःकरणमें वही काम-क्रोध-लोभ बना रहेगा। आपके मनमें वही मोह-ममता-चिढ़न-कुढ़न बनी रहेगी। आपके हृदयमें सुख-शान्ति-सन्तोष नहीं होगा। आपके जीवनमें आनन्द-उल्लास नहीं होगा। मस्ती-सस्ती नहीं है हो! प्यास लगनेपर पानी मिले, तो पानीकी बूँद-बूँदकी कीमत होती है। यदि प्यास न हो और पानीका गिलास सामने आ जाये, तो आप उस गिलासको हाथमें लेनेसे भी इन्कार कर देंगे और यदि शिष्टाचार

वश हाथमें गिलास पकड़ भी लें तो अनमने भावसे एकाध घूँट पीकर छोड़ देंगे। है कि नहीं! नारायण! जबतक ज्ञान-प्राप्तिकी पिपासा न हो, ज्ञान-क्षुधासे हृदय व्याकुल न हो, तबतक ज्ञानका पूर्ण लाभ नहीं होता है। जैसे भूख-प्याससे प्राण अकुलाते हैं न, वैसे ही जब जीवनमें अज्ञान-भ्रम निवारणकी तीव्र अभिलाषा हो, व्याकुलता हो, तब ज्ञान हृदंगम होता है हो! आप कम-से-कम अपना मन तो एकाग्र करो। अपनी बुद्धिको थोड़ी तो ग्रहणशील बनाओ कि वह हमारी बातको पकड़े। अगर आप हमारे ज्ञानकी इतनी कीमत भी नहीं चुकाओगे, तो हमारी यह बात आपके हृदयमें प्रवेश ही नहीं करेगी। भीतर बैठेगी ही नहीं। बाहर-ही-बाहरसे चली जायेगी। ऊपर-ही-ऊपरसे उड़ जायेगी। हमारे ज्ञानकी कीमत अदा करो और उसे आत्मसात् करो!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

□

२

समत्वका महत्त्व

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

यदि मनुष्यका स्वभाव बिगड़ जाये, तो आज भले उसे दुःख न हो; परन्तु आगे जाकर अवश्य होगा। एक लड़का था। उसे गाली देनेका स्वभाव पड़ गया। पाठशालामें निरीक्षक आये। उसने उनको गाली दी। निरीक्षक महोदय हँसते रहे। जब लड़का खूब गालियाँ दे चुका, तब उसे उन्होंने एक रुपया पुरस्कार दिया। इससे लड़केका गाली देनेका उत्साह बढ़ गया। कुछ दिनोंमें पुलिस इन्सपेक्टर आये। उन्हें भी उसने गाली देना प्रारम्भ किया। फल यह हुआ कि पुलिसके सिपाहियोंने उस लड़केको पकड़कर बहुत पीटा। तात्पर्य यह है कि यदि कभी बुरा काम करनेसे सफलता मिल भी

जाये, तो भी स्वभाव बिगड़ना माने जीवनमें दुःखकी सृष्टि करना है। अतः बुद्धिका सन्तुलन नहीं खोना चाहिए। *'समबुद्धि-र्विशिष्यते'* समान बुद्धिवाला विशिष्ट है।

सुहृन्मित्रार्युदासीन - मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

(गीता-६,९)

क्या आप जानते हैं—सबसे विशिष्ट समाहित पुरुष कौन है? *जो पुरुष सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बन्धु, साधु और पापीमें भी समबुद्धि रखता है, वह विशिष्ट है।*

नारायण! सुहृद कौन है? मित्र कौन है? आइये! इन शब्दोंके अर्थ-अभिप्रायपर तनिक दृष्टिपात करें। *'सुहृद्-उपकारमनवेक्ष्य स्वभावत उपकारी सुहृद्।'* जो उपकारकी अपेक्षा न करके अपने स्वभावसे हमारा उपकार करनेवाला है, वह सुहृद् है। हम उसका उपकार करते हैं या नहीं और आगे उसका भला करेंगे या नहीं, यह देखे बिना जो अपने हृदयकी पवित्रतासे हमारी भलाई करता है; वह सुहृद् है।

अच्छा! यह भी है—*'सुष्ठु अन्तःकरणं हृदयं यस्य स सुहृद्।'* जिसका अन्तःकरण सुन्दर है, वह सुहृद् है। मित्र वह है, जिसके दर्शन, भाषण, स्पर्श स्मरणसे हमारा हृदय स्निग्ध होता हो। *'ञिमिदा स्नेहने मेद्यति इति मित्रम्।'* मित्रका अर्थ है—स्नेह उत्पन्न करनेवाला जो हमारे स्नेहको जगा दे, वह मित्र है। जो हमसे स्नेह करे, वह सुहृद और जिससे हम स्नेह करें, वह मित्र। इसी प्रकार, अरि—जो हमसे शत्रुता करे। द्वेष्य—जिससे हम शत्रुता करें। जो छिपकर अनभल करे, वह अरि और जो प्रत्यक्ष अनभल करे, वह द्वेष्य। उदासीन—दो मनुष्य लड़ने लगे। एकने उपेक्षाकर दी-लड़ने दो, यह उदासीन है। मध्यस्थ—जो दो लड़ते लोगोंके बीचमें पड़कर झगड़ेको शान्त करा दे। बन्धु—जो जन्मसे ही हमारा हितैषी है।

अच्छा! एक बात बताओ। क्या धर्मात्मा और पापीमें तुम कोई निर्णायक हो? साधु और पापीके कर्मोंके तुम कोई ठेकेदार नहीं हो। क्या ईश्वरने तुम्हें सबके कर्मोंका जज बनाया है? क्या तुमने सबको सुधारनेका पट्टा लिया

है? नारायण! तुम केवल अपनेको सुधारो। यदि सब लोग दूसरोंको सुधारनेमें ही लगेंगे, तो कोई नहीं सुधरेगा। यदि सब लोग अपने-अपनेको सुधारेंगे, तो सब-के-सब सुधर जायेंगे। अतः अपनेको सुधारो और अपनी बुद्धि समतामें बनाये रखो! समतामें स्थित बुद्धिवाला विशिष्ट योगी है। '*समबुद्धिर्विशिष्यते*'—'*विशिष्यते*'—का अर्थ है कि विशिष्ट योगी वही है, जो समबुद्धि है। भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण गीतामें समत्वको जितना महत्त्व देते हैं, उतना महत्त्व और किसी विषयको नहीं देते हैं। समत्व ही तत्त्व है। तत्त्व ही जीवन है। जीवनमें समत्वको महत्त्व दो।

'*समलोष्टाश्मकाञ्चनः*' इनमें समता चाहिए। यदि तुमको इनसे कुछ लेना-देना है, तो उनसे प्रयोजन रखो; किन्तु यदि तुम्हें योगकी पराकाष्ठापर पहुँचना है, तो इनकी अच्छाई-बुराईसे तुम्हारा क्या सम्बन्ध? किसी भी दृष्टिकोणसे वैषम्यमें तथ्य नहीं है। जहाँ विषमता है, वहाँ दृष्टिकोणसे वैषम्यमें तथ्य नहीं है। जहाँ विषमता है, वहाँ दृष्टिकोण ही नहीं है। वहाँ अन्धापन है। वस्तुतः समता ही दृष्टि है। ब्रह्मदृष्टिसे

सब अद्वय ब्रह्म है। ईश्वर दृष्टिसे सब ईश्वर है। अच्छा! यदि सब माया या प्रकृति है, तो भी सब मिथ्या है, तो सम है। सब पञ्चभूत हैं, तो सम है। नारायण! असलमें समता ही समान—मान-सहित दृष्टि है।

मीयते अनया इति मानं तया सहितः समानः।

सम ही प्रमाण-सहित वस्तु है। शेष सब-का-सब निष्प्रमाण है। यथार्थानुभव यही है कि हमारे मनमें समता है। जिसके मनमें समता नहीं है, उसे यथार्थानुभव नहीं है। ब्रह्मसे पञ्चभूततक सब सम है। खटमल और हाथी दोनों पञ्चभूतसे बने हैं।

'समबुद्धिर्विशिष्यते—*समा वैषम्यवर्जिता बुद्धिर्यस्य असौ समबुद्धिः।*'

जिसकी बुद्धि वैषम्यवर्जित है, वह समबुद्धि है। जिसके हृदयमें वैषम्य है, उसके हृदयमें तो ज्येष्ठा भगवती अलक्ष्मीका वास है। माँ माने श्री। हृदयमें श्रीका वास समताका वास है। समतामें ही सौन्दर्य है। माँ माने शोभा। जहाँ समत्व है, वही शोभा है। जब दोनों नेत्र बराबर हों, दोनों कान बराबर हों,

दोनों नासिका-छिद्र बराबर हों, दोनों कपोल बराबर हों, दोनों पैर बराबर हों, तब शोभा है। यदि ये छोटे बड़ें हों तो? एक मनुष्यने एकको उपदेश लिख भेजा 'पति-पत्नी गृहस्थी रूपी रथके पहिये हैं। इन्हें समान चलना चाहिए। तभी घर सुखी रहता है। पत्नीने उत्तर दिया—'यदि एक ट्रैक्टरका पहिया हो और एक सायकिलका, तो दोनों कैसे समान चलें?' समत्वमें ही सौन्दर्य है, लक्ष्मी है, सुख है, ज्ञान है। समत्व ही वास्तविक जीवन है। नारायण! जिनका मन समतामें स्थित है, उन्होंने यहीं—इसी जीवनमें जन्म-मरणको जीत लिया है। समता ब्रह्म है। वह निर्दोष है। अतः वे ब्रह्ममें स्थित हैं।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

(गीता)

अच्छा! भला यह तो बताओ कि यदि कोई स्वयं तो राग-द्वेष न करे; किन्तु जो राग-द्वेष करते हों, उनके विषयमें क्या करे? नारायण! देखो! ये राग-द्वेष करनेवाले बुरे हैं

और ये राग-द्वेष न करनेवाले अच्छे हैं, यह भाव स्वयं राग द्वेष है। यदि अपने हृदयको निर्मल बनाना है, तो वैराग्यवान्से राग-द्वेष मत करो और राग-द्वेष करनेवालेसे भी राग-द्वेष मत करो। कर्मके प्रति भी समान रहो। अपकर्मके प्रति द्वेष मत रखो और सत्कर्मके प्रति राग मत रखो। *'न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।'* अकुशल कर्मसे द्वेष नहीं करता और कुशल कर्ममें आसक्ति नहीं रखता। प्रत्येक व्यक्तिके प्रति समबुद्धि रखो यदि किसी व्यक्तिको देखकर तुमने अपने चित्तमें एक रजिस्टर खोल लिया—*'कः'* यह कौन है? *'किं कर्म'* इसका क्या कर्म है? इसने यह पाप, यह पुण्य किया, इत्यादि। तो तुम्हारी बुद्धि इस व्यापारमें ही लग जायेगी। नारायण! फिर तो तुम्हारा योग हो चुका। अतः दूसरेके विषयमें पता मत लगाओ। अपनी बुद्धिको दूसरोंकी अच्छाई-बुराईमें न लगाकर आत्मचिन्तनमें लगाओ। एक दम्पतिको अपने बेटे-बहूकी बातें सुननेका स्वभाव पड़ गया। जब उनका बेटा-बहू कमरेमें होते, तब वे एक खिड़कीके पास छिपकर उनकी बातें सुनते। फलतः सबेरे लड़ाई होती।

घर दुःख-कलहका स्थान हो गया। नारायण! यदि तुम्हें अपनी बुद्धि शान्त करनी है तो दूसरोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करके क्या करोगे? यदि तुम्हें अपनी बुद्धि समाधिस्थ करनी है, तो दूसरोंके विषयमें सोचकर क्या करोगे?

'साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।'

सबके प्रति अपने चित्तमें समता रखो और समबुद्धिसे आत्मचिन्तन करो। श्रीरामानुजाचार्यजीका कहना है-

'प्रयोजनाभावत् विरोधाभावाच्च।'

तुम्हें अपने स्वरूपमें बैठना है। यह देख लेना है कि तुम भगवान्‌से मिलने योग्य हो या नहीं। पत्नी अपने प्रियतमसे मिलनेके लिए श्रृंगार कर रही है और सोच रही है-'उन्हें किस रंगका वस्त्र पसन्द होगा।' अब भला बताओ! उसे अपनी पड़ोसिनके वस्त्र देखने जानेसे क्या प्रयोजन? अब उसे इससे क्या लेना-देना कि दूसरी स्त्री अपने पतिको किस वेशसे प्रसन्न कर रही है? उसका खण्डन भी नहीं करना है। जो खण्डन-मण्डनमें लगेगा, उसकी बुद्धि दूसरेको नीचा दिखानेमें ही लग जायेगी। अपने दोषापनयन और

गुणाधानमें कैसे लगेगी? श्रीरामानुजाचार्यजीका तात्पर्य है कि जीवको पहले अपने स्वरूपका साक्षात्कार होता है कि आत्मा देहादिसे विलक्षण है। आत्मा सत्-चित् -आनन्द है। आत्मा परमात्माका अंश है। आत्मा परमात्माका भोग्य है, नियम है, आश्रित है। तब वह ऐसा ही होकर परमात्मासे मिलनेका साधन करता है। जब पहले आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हो लेता है, स्वतत्त्वका बोध हो जाता है तब परतत्त्वका साक्षात्कार होता है। यदि आत्मदेव किसीके साथ वैर-विरोधमें लगे, तो जीवन समाप्त हो जायेगा। जब हमें किसीसे कुछ लेना-देना ही नहीं है, तब क्यों किसीसे मैत्री या विरोध किया जाये? सड़कपर कौन-कौन चलता है, हमसे क्या मतलब? चाहे कोई चलता रहे। हमें तो अपने सच्चिदानन्दपरमात्म-स्वरूपआत्म-साक्षात्कारसे प्रयोजन है। आत्मा-परमात्माके सिवाय किसीसे कोई प्रयोजन ही नहीं है, तो क्यों किसीसे वैर-विरोध किया जाये? चाहे कोई अच्छा काम करे अथवा बुरा काम करे, सबके प्रति समबुद्धि रखकर आत्म-परमात्म-चिन्तनमें जीवन-काल क्षेप करना ही सार्थकता है।

इस सम्बन्धमें द्वैतवादके आचार्य श्रीमध्वाचार्यजीका कहना है कि चैतन्यरूपसे सब-के-सब जीवात्मा समान होते हैं। सब चिद्रूप हैं। फिर साधु और पापी क्या? अन्त:करणकी उपाधिमें साधुता और पापिता रहती है। इस सारी सृष्टिके रूपमें एक ही ईश्वर प्रकट है। जीवके कर्मानुसार तत्-तत् उपाधि रूपमें परमेश्वर ही प्रकट है। श्रीमध्वाचार्यजीका अभिप्राय है कि सब-के-सब आत्मा चेतनरूप ही हैं। बड़ी लकड़ीमें आग लगी तो बड़ी और छोटी लकड़ीमें लगी तो छोटी; किन्तु हैं दोनों आग ही। इसी प्रकार, चेतनांशमें सब एक हैं। सब सत्-चित्-आनन्दस्वरूप परमात्माका अंश हैं। आप पूछते हैं—किसीका कर्म पुण्य है और किसीका पाप। इसमें समत्व कैसे देखें? पापकर्तृत्व और पुण्यकर्तृत्व अन्त:करणमें हैं। सबके अन्त:करणका उपादान ईश्वर ही है। तब पाप-पुण्य कर्म अथवा पाप-पुण्य वासना क्या? इसमें कोई जीव स्वतन्त्र भोक्ता है। सब जीव ईश्वर-पराधीन हैं। सबके अन्त:करणके रूपमें ईश्वर ही प्रकट हो रहा है। वही पुण्य-पापकी लीला

कर रहा है। जैसे माता एक बच्चेको गोदमें लेकर दूध पिलाती है और एकको खेलने भेजती है; वैसे ही ईश्वर जीवोंका संचालन करता है। इसमें जीवका कोई दोष नहीं है। तब तुम सबके प्रति समान रहोगे? नहीं, ईश्वर तुम्हें अपनी ओर बुला रहा है। तुम भगवद्भक्तका अधिक आदर करो। इस्से हृदयमें भगवद्भक्ति आयेगी। बुरे लोगोंका आदर करने मत जाओ; परन्तु किसीकी बुराई मत करो। सब ईश्वरका खेल है। इसमें राग-द्वेष करना व्यर्थ है।

काशीमें श्री श्रीआनन्दमयी माँके उत्सवमें एक बार बाबा खलीलदासको बुला लिया गया। वे काशीके बड़े मुल्ला हैं। उन्होंने वेद भी पढ़े हैं। वे बोले—'वर्षा होती है तो किसीकी दृष्टिमें—*'धूमोज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।'* धर्मात्मा कहते हैं'—मेघके देवता इन्द्र हैं। उनकी आज्ञासे मेघ जलवृष्टि करते हैं इस्लाम कहता है—एक खुदा है। वर्षा उसकी कुदरत है। पानी बरसते देखकर एकने केवल बादल देखा और एकने देवता देखा। अपनी-अपनी दृष्टि है। सब दृष्टिका विलास है।

जब हम किसीको अच्छा काम या बुरा काम करते देखते हैं, तब उसका काम तो उसके साथ है; किन्तु हमारी दृष्टि कहाँतक जाती है? उसकी क्रिया तक जाती है? उसके शब्दतक जाती है? उसके अन्तःकरणतक जाती है। उसके जीवतक जाती है? अन्तर्यामी ईश्वरतक जाती है? अथवा आत्मतत्त्वपर जाती है? देखना यह है कि हमारी दृष्टि कितनी पैनी है? जब हम किसीसे मिलते हैं, तब उसके शरीरमें जो दोष-गुण हैं, उन्हें देखनेकी आवश्यकता नहीं है। उसके अन्तःकरणमें जो विकार-संस्कार हैं, उन्हें भी देखनेकी आवश्यकता नहीं है। उसके भीतर जो ईश्वर है, उसे देखो और उसका आनन्द लो। अपनी दृष्टि तत्त्वतक जाने दो। जब आभूषण खरीदते हो, तब उसका आकार-कला-कारीगरी मात्र ही देखते हो या सोना देखते हो? यदि सोना देखे बिना खरीदोगे, तो ठगे जाओगे। ऐसे ही, जिस चेतन आत्त्मतत्वसे सृष्टि बनी है, उस चेतनको परख लो। तब सृष्टिमें अच्छा बुरा क्या? सब परमात्मा है। परमात्मामें सब है। सबमें परमात्मा है।

यह बात सबकी समझमें क्यों नहीं आती? क्योंकि यह सबके समझनेके लिए है ही नहीं। श्रीवेदान्तदेशिकाचार्य कहते हैं—यह सबके करनेकी बात नहीं है *'समबुद्धिर्विशिष्यते'*। विशिष्ट योगकी अन्तिम कक्षामें जो स्थिति है—जिनकी समाधि लगने ही वाली है, उनकी ऐसी स्थिति होती है'। जबतक ऐसी स्थिति नहीं होगी, तबतक न तो स्वरूप अवस्था होगी, न समाधि लगेगी और न ही भगवान्‌से मिलन होगा।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

□

३

सुखकी चाह

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

सुख समस्त प्राणियोंके लिए प्राप्तव्य है। प्राणीमात्रकी चाह है कि मुझे सुख हो और दुःख न हो।

'सुखम् मे भूयात्, दुःखम् मे माभूत्।'

यहाँ तक कि एक खटमलको हाथसे छूनेका प्रयास-मात्र करो, तो वह भाग जाता है; दुःखसे बचता है। एक मच्छरको भी मारना चाहो, तो वह उड़ जाता है; दुःख-निवृत्ति व सुख-प्राप्ति प्राणीमात्रको अभीष्ट है।

हाँ! तो आप सुख चाहते हैं। आपकी चाहतके सुखका स्वरूप क्या है? थोड़ा ध्यान देनेपर आप जानेंगे कि आप चाहते हैं कि आपको सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वजनिक,

अश्रान्त, स्वाधीन व ज्ञात सुखकी प्राप्ति हो। अर्थात् आप वह सुख चाहते हैं जो सब जगह हो, सब समय हो, सबसे हो, बिना परिश्रमके हो, बिना पराधीनताके हो और सर्वदा मालूम पड़ता हो—चमचम-चमचम चमकता हुआ, जगमग-जगमग जगमगाता हुआ, झिलमिल-झिलमिल झलकता हुआ। अब इन सबको एकमें मिला दें तो इस पिण्डीकृत सुखका नाम है—ईश्वर। अर्थात् आप चाहते हैं—सुखस्वरूप ईश्वर। प्राणीमात्रको सुखस्वरूप ईश्वर-प्राप्ति अभीष्ट है।

आपका अभीष्ट सुख आपके पास; स्वयं आपका अपना आत्मा है; किन्तु उसपर आपकी दृष्टि नहीं जाती है। एक व्यक्तिकी थाली खो गयी। जब सारा घर ढूँढ़नेपर भी थाली कहीं नहीं मिली, तो उसने बाहर रखे घड़ेमें हाथ डाला कि शायद यहाँ थाली मिल जाये। भला! घड़ेमें थाली मिल सकती है? कभी नहीं। एक बुढ़िया बहती सड़कपर खड़ी होकर कुछ ढूँढ़ रही थी। राहगीरने पूछा—माई क्या ढूँढ़ रही हो? बुढ़िया—सूई। राहगीर कहाँ खोई थी? बुढ़िया—घरमें। राहगीर—तब यहाँ क्यों ढूँढ रही हो? बुढ़िया—

घरमें दीया नहीं है; वहाँ कैसे ढूँढ़ती? यहाँ सड़कपर म्युनिसिपैलिटीकी रोशनी है; इसलिए यहाँ आकर ढूँढ़ रही हूँ। कहनेका तात्पर्य यह है कि जहाँ आपकी वस्तु खोई है, वहाँ तो आप ढूँढ़ते नहीं हैं; और व्यर्थ ही बाहर भटक रहे हैं। यदि आपका अभीष्ट सुखस्वरूप ईश्वर आपके हृदयमें नहीं है, तो अन्य कहीं नहीं हैं। यदि वह इस समय नहीं है, तो और कभी नहीं है। यदि वह आपमें नहीं है, तो किसी दूसरेमें नहीं है। यदि वह आप स्वयं नहीं, तो अन्य कोई नहीं है। आप अपने हृदयस्थ परमेश्वरको सुखस्वरूप जानिये!

बाह्य वस्तुओं व व्यक्तियोंकी अपेक्षा छोड़कर आप अपने हृदयमें पवित्रता धारण कीजिये। अपने पवित्र हृदयको अपने सुखी होनेका एकमात्र स्थान बना लीजिये। आपका सुख सदा-सर्वदा बना रहेगा। यदि आप बाह्य वस्तुओं व व्यक्तियोंकी अपेक्षासे सुख प्राप्त करना चाहते हैं; तो यह सर्वथा असम्भव है। एक महाजन बहुत-साधन पोटलीमें बाँधकर यात्रा पर निकला। रात बीती। सुबह हुई। महाजनने अपनी पोटलीको एक पेड़के नीचे रख दिया और स्वयं पास

हीके कुएँपर जाकर स्नान करने लगा। स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवद् -भजन करनेके लिए बैठा। किन्तु, बारम्बार वह अपनी आँख खोलकर पेड़के नीचे रखी पोटलीको देखता और जब जानता कि पोटली सुरक्षित है, तो फिर आँख बंद करके अपना भगवद्-भजन प्रारम्भ करता। परन्तु, उसके हृदयमें भजनका सुख नहीं मिला अपितु दिमागमें तनाव उत्पन्न हो गया। महाजनके मनमें धनदौलतके प्रति अति प्रीति व आसक्ति थी। अतः वह पोटली उसके बंधनका हेतु बनी और बन्धन तो दुःखका हेतु है ही।

एक सज्जन मन्दिरमें भगवान्‌का दर्शन करने गये। मन्दिरमें एक स्थान ऐसा था, जहाँ वे भगवान्‌की मूर्तिको भी देख सकते थे और मंदिरके फाटकके बाहर रखे अपने जूतेको भी। अब 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' बोलते समय देखते मूर्तिकी ओर और 'त्वमेव बन्धुः च सखा त्वमेव' बोलते समय देखते जूतोंकी ओर कि सुरक्षित पड़ें हैं या नहीं! इस प्रकार उनका दिमाग एकबार जाता मूर्तिकी ओर और एक बार जाता जूतोंकी ओर! परिणामतः भगवद्-दर्शनका सुख

तो प्राप्त नहीं हुआ; बल्कि दिमागमें तनाव और हृदयमें खिंचाव हो गया। यदि आप अपना सुख अपने हृदयसे बाहरकी किसी अनात्मवस्तुमें रखेंगे तो आपका दिमाग अपनी जगहपर न रहकर उस अनात्मवस्तु—विषयके साथ बँध जायेगा। आप एकबार अपनी ओर देखेंगे और एकबार उस विषयकी ओर। संस्कृतमें 'विषय' शब्दका अर्थ है—'विषेणवन्ति। सिञ् बन्धने' धातुसे कई प्रत्यय ऐसे हैं, जिनसे कई अर्थोंमें विषय शब्द बनता है। विषयन्ते जना अनेन इति विषयः। 'विषिण्वन्ति इति विषयाः। विषयति इति विषयाः।' बंधनके हेतुका नाम है—विषय। जबतक आप अपने हृदयमें विषयके प्रति प्रीति व आसक्ति रखेंगे, तबतक आपके दिमागमें तनाव होगा, हृदयमें खिंचाव होगा और आपके जीवनमें सुख-शान्ति व आनन्दका अभाव होगा।

कोई भी विषय सार्वदैशिक व सार्वकालिक नहीं हो सकता है। आपको सभी विषयोंसे सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। कभी-कभी, किसी-किसी अनुकूल विषयसे ही सुखकी एक छायामात्र दिखाई पड़ सकती है। अथक

परिश्रमके उपरान्त प्राप्त सुख तो विश्राम-मात्र ही है। विषय-पराधीन होकर आप कभी सुखी नहीं रह सकते। एकदेशिक, क्षणिक विषयासक्त होना माने बन्धनमें पड़ना अपने दिल व दिमागमें तनाव उत्पन्न करना; और अपने लिए दुःख मोल लेना। जब मनुष्य-हृदय तनावग्रस्त होता है तब वह अकर्तृत्व भी करने लगता है; अभोक्तृत्व भी भोगने लगता है; और उसका जीवन विषाद व विषमतासे आक्रान्त हो जाता है। इसलिए, जबतक आप अपने अन्तर्यामी ईश्वरको सुखस्वरूप नहीं जानेंगे, तबतक आप कभी सुखी नहीं होंगे।

आप अपने हृदयदेशमें विराजमान आत्मा-परमात्माको सुखस्वरूप अनुभव कीजिये। आप अपने हृदयकी रक्षा कीजिये। आपका हृदय खजानोंका भी खजाना है। अगर आप अपने हृदयको सुरक्षित रखते हैं, तो आप सम्पूर्ण विश्वको सुरक्षित रखते हैं।

रक्षत रक्षत कोषानामपि कोषं हृदयम्।
यस्मिन् सुरक्षिते सर्वम् सुरक्षितं स्यात्॥

हृदयकी सुरक्षाके मुख्यतः तीन उपाय हैं—सत्-स्वरूपमें

स्थिति; चित्तमें समता; और व्यवहारमें असंगता। आप अन्तर्मुखी बनिये। अपने नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त असंग आत्मस्वरूपका अनुसन्धान कीजिये। सत्य-ज्ञान-आनन्द-अद्वय परमात्स्वरूपका चिन्तन कीजिये। ब्रह्मात्मैक्यानुभूति कीजिये। अपने जीवनमें जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख प्राप्त कीजिये। अपनी चितवृत्तिमें सभी देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, स्थितिके प्रति समता रखिये; क्योंकि ततत्त्वः सब परमात्मा है। अपने सम्बन्धमें सावधान रहिये! 'संबन्धे सावधानता।' आप अपनेको अपने संबन्धमें कहाँ जोड़ रहे हैं, कहाँ बाँध रहे हैं, इस बातपर सावधान रहिये। अपने व्यवहारमें असंग व अनासक्त रहिये। अपने दिल और दिमागको छोटे-छोटे विषय-बन्धनोंसे और सम्बन्ध-भावोंसे मुक्त रखिये। अपने जीवनको अनादि, अनन्त ब्रह्ममें लीन कीजिये। वस्तुतः ब्रह्मानुभूतिमें ही जीवन्मुक्तिकी विलक्षण सुखानुभूति है!

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

□

४

अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

घरमें भोजन तैयार था। थाली परसी गयी थी। राम हाथ-मुँह धोकर भोजनके लिए आसन-बद्ध था। अभी पहला कौर हाथमें ही था कि उसका मित्र श्याम वहाँ पहुँच गया। उसने खूब गौरसे थालीमें परसे भोजनकी ओर देखा और फिर रामसे कहा—'अरे! अरे! क्या तुम यह भोजन करोगे? देखो तो सही दाल पानी सरीखी पतली है; चावल एकदम गल गया है; सब्जी कच्ची है और रोटी जली हुई है। तुम यहाँसे तुरन्त उठो। यह ग्रास भी छोड़ो। यह भोजन तुम्हारे करने योग्य नहीं है।' राम आसन छोड़कर उठ गया और श्यामके साथ चल पड़ा। चलते-चलते कुछ ही दूर पहुँचनेपर

राम श्यामसे बोला—'मुझे तो बहुत भूख लगी है। घरका भोजन तो तुमने छुड़वा दिया। अब मैं क्या खाऊँ?' श्याम तपाकसे बोला—'यह मैं क्या जानूँ कि अब तुम क्या खाओ? वह दाल-चावल-सब्जी-रोटी तुम्हारे खाने योग्य नहीं था। अतः मैंने तुम्हें खानेसे रोक दिया।' राम बोला—'भलेमानुस! इस तरह भूखे रहनेकी अपेक्षा तो कहीं अच्छा था कि मैं घरपर ही भोजन कर लेता। मेरी स्वयंकी दृष्टिमें तो भोजन सम्पूर्ण त्याज्य भी नहीं था। सर्वथा भूखे रहनेकी अपेक्षा तो कच्चा-पक्का, जला-गला जैसा भी भोजन उपलब्ध हो वैसा ही स्वीकार करना श्रेयस्कर है। कम-से-कम उदर-क्षुधा-पूर्तिका प्रयोजन तो सिद्ध होता।'

अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः सर्वथा कुछ न करनेसे उल्टा-सीधा जैसा बने, वैसा करना अच्छा है। पत्थरके समान पड़े रहनेकी अपेक्षा कीड़े-जैसा हिलना-डोलना अच्छा है। कीड़ेके समान हिलने-डुलनेकी अपेक्षा चींटीके समान श्रम करके दाने एकत्र करना अच्छा है। चींटी समान इधर-उधर लोगोंको काटनेकी अपेक्षा पक्षीके समान फल-फूल खाना अच्छा है। पक्षीके जैसे अपने ही पेटको भरनेकी अपेक्षा

गायके समान दूध देना अच्छा है। गाय या बैलके समान काम करनेकी अपेक्षा मनुष्यके समान विचारपूर्वक काम करना अच्छा है।

कर्म तो तमोगुणी वृत्ति मिटानेका-निद्रा आलस्य, प्रमाद छुड़ानेका-साधन है। कर्म करेंगे तो बुद्धि जागेगी। बुद्धि जागेगी तो अच्छा-बुरा सोच लेगी। एक व्यक्तिने कहा-'मुझे संन्ध्या-वन्दन नहीं आता है।' मैंने कहा-'तुम्हें जैसा आता है वैसा ही करो। करते-करते ठीक आ जायेगा।' क्रियामें दोष नहीं होता। बुद्धिमें दोष होता है। अतः विवेकपूर्वक कर्म करो।

ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषमें केवल इतना ही अन्तर है कि ज्ञानी आसक्ति और वासनासे रहित होकर लोक-संग्रहके लिए कर्म करता है और अज्ञानी आसक्ति व वासनासे प्रेरित होकर अपने लिए कर्म करता है। ज्ञानी जानता है कि आसक्ति व वासनासे प्रेरित कर्म दुःखका हेतु है। वह अज्ञानियोंको यह बात समझाना चाहता है कि आसक्ति व वासनासे विनिर्मुक्त शुद्ध अन्तःकरण द्वारा लोक-कल्याण-हेतु सम्पन्न कर्मानुष्ठान दुःखकी सृष्टि नहीं

करता है। कर्तृव्य-भोक्तृत्वका अभिमान ही बन्धन व दुःखका हेतु है। किन्तु, इससे कोई लाभ होनेवाला नहीं है। उलटे इससे हानिकी ही सम्भावना है। अतः ज्ञानी पुरुषको कर्मासक्त अज्ञानी पुरुषोंमें बुद्धिभेद उत्पन्न नहीं करना चाहिए। अपितु, उसे स्वयं उपयुक्त कर्मका भली-भाँति आचरण करते हुए अज्ञानियोंको सभी कर्मोंमें लगाना चाहिए।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥

(गीता ३.२६)

अज्ञानी पुरुष कर्मासक्त होता है। वह कर्म किये बिना रह नहीं सकता। वह एक काम छोड़ेगा तो दूसरा काम करेगा। अतः जो अज्ञानी पुरुष कर्ममें आसक्त हैं, उसका साधन-कर्म छुड़ाना नहीं चाहिए। एकने किसीसे कहा-'शालिग्राम-पूजन तो अज्ञानी करते हैं। तुम यह मूर्खतापूर्ण कर्म मत किया करो।' पूजन छुड़ा दिया। कर्म किये बिना वह व्यक्ति रह नहीं सकता था। अब वह बाजारमें जाकर चोरी-बेईमानी करने लगा। कहो! पूजन ठीक काम था या चोरी-बेईमानी ठीक काम है?

बयालीस वर्ष पूर्वकी बात है। एक नवयुवक मेरे पास रहने उसकी एक रासधारी लड़केसे आसक्ति हो गयी। सब पैसा उसे दे दिया। कहींसे कुछ मिलता तो वह भी उसे दे देता। एक दिन अपना कुर्त्तातक दे आया। मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की—'हे प्रभो! यह नवयुव्क इतना होनहार है। इसकी यह आसक्ति मिटा दो।' जब नवयुवकके पास देनेके लिए कुछ नहीं रहा तो उस रासधारी लड़केसे उसकी खटपट हो गयी। परस्पर मारपीट तक हो गयी। लेकिन, लड़केसे आसक्ति छूटी तो एक लड़कीमें हो गयी। मैंने कहा—'हे भगवन्! मुझे क्षमा करो। आपकी जो मौज हो, सो ही करो। जो थारी राय सो म्हारी राय।'

एक साधु त्रिपुण्ड्र लगाता था। जब वह वृन्दावन गया तो लोगोंने कहा—'त्रिपुण्ड्र लगाओगे तो भूत-प्रेत (शिवगण) बनोगे। ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाओ तो वैकुण्ठ जाओगे।' अब वह खड़ा चन्दन लगाने लगा। जब वह काशी गया तो लोगोंने कहा—'यह क्या कठमलिया बन गये? त्रिपुण्ड्र लगाओ तो शिवलोक जाओगे।' साधुने कहा—'तुम सब लोग ऐसे ही बकते हो। लो! हम चन्दन लगाना ही छोड़ देते हैं।'

नारायण! प्रायः सामनेवाला व्यक्ति कहनेवालेकी नियम त्यागनेकी बात ही सुनता-मानता है। कर्म-त्यागकी विधि शास्त्रमें है। किन्तु, वह किसीसे कर्म-त्याग करानेकी विधि नहीं है। वह स्वयं कर्म छोड़नेकी विधि है। सच बात तो यह है कि कर्म छोड़नेकी विधि भी नहीं है। विधि है कर्म छूटनेकी।

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत् यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

(भागवत ११.२०.९)

भगवान् कहते हैं—'जबतक वैराग्य उत्पन्न न हो अथवा जबतक मेरी कथा-श्रवणादिमें—पूजनमें—श्रद्धा न हो जाये, तबतक कर्म करे।' कर्मकी अवधि है—वैराग्य-उत्पत्ति अथवा भगवत्कथा-श्रवणादिमें श्रद्धा-मग्न हो जाना। आप ऊपर जानेके लिए नीचेकी वस्तु छोड़ें, यह तो ठीक है; किन्तु, जिसे पकड़े हैं, उसे त्यागकर नीचे गिरें, यह ठीक नहीं है।

विद्वान् पुरुषको चाहिए कि वह किसी व्यक्ति या कर्मका पक्ष न ले। स्वयं सावधान रहकर, जो काम उसके सामने आये, उसीमें संलग्न रहे और दूसरोंको भी उसके कर्मोंमें

संलग्न रहने दे। महात्मा लोग तो संसारके विषयमें कुछ भी सोचना और बोलना पसन्द ही नहीं करते हैं।

एवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात्।

(भागवत)

वेदान्तके अनुसार व्यवहार केवल दो ही बातोंमें है—सोचनेमें और बोलनेमें। यदि आप किसीका भी अहित नहीं सोचते हैं और बोलनेंमें नियन्त्रण रखते हैं, तो आपका व्यवहार शुद्ध है।

एकने पूछा—'यह तुलसी क्या है?' महात्माने कहा—'जैसी तुमको दीख रही है, वही है।' उसने कहा—'यह परमात्मा है।' महात्मा—'क्या पूछना है? परमात्माके अतिरिक्त तो कुछ है ही नहीं।' वह बोला—'नहीं! यह दृश्य है। नाशवान् है।' महात्मा—'यह भी ठीक है। तुमको इससे आसक्ति नहीं होगी।'

श्री उड़िया बाबाजी महाराजको लोग वृन्दावनमें श्रीबिहारीजीके मन्दिरमें ले जाते, तो वे वहाँ खड़े रहते। गोस्वामियोंको यह बात बुरी लगती। वे कहते—'यह बिहारीजीको प्रणाम नहीं करता।' मैंने बाबासे कहा, तो

बोले—'याद नहीं आती । तुम तनिक हाथ छू दिया करो, तो याद आ जायेगा। प्रणाम कर लिया करेंगे।'

भगवान् शङ्कराचार्य वर्णाश्रम धर्मके प्रतिष्ठाता हैं। वे कहते हैं—

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा,
न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि।

'न मेरा कोई वर्ण है, न वर्णाश्रमाचार धर्म है। मेरे स्वरूपमें धारणा, ध्यान, योगादि भी नहीं हैं।'

श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके समीप सत्तर वर्षकी आयुके एक कट्टर वेदान्ती सज्जन आते थे। उन्होंने मेरे एक ब्रह्मचारीसे पूछा—'तुम ब्रह्मचारी हो तो भिक्षा माँगकर क्यों नहीं खाते?' उनकी बात सुनकर मुझे हँसी आगयी। वे बोले—'आप हँसे क्यों?' मैंने कहा—'बाबूजी! आप ब्राह्मण हैं। यज्ञोपवीतधारी हैं। आप सन्ध्या क्यों नहीं करते?' वे बोले—'आपकी बात तो बिल्कुल ठीक है।' वे स्नान करके ही आये थे। लोटेमें जल लेकर बैठ गये और 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा ....' करने लगे। जब सन्ध्या करके उठे तो मैंने उनसे पूछा—'बाबूजी! आज पचास वर्षके बाद आपको

सन्ध्या करनेकी स्मृति हुई?' उन्होंने कहा—'मैं बचपनसे वेदान्ती हूँ। जब मेरी आयु इक्कीस वर्षकी थी, तब आर्यसमाजके ब्रह्ममुनि मेरा विवाह कराने आये थे। उस समय मैं उनसे कहता था—यह सब आपका भ्रम है। न कोई लड़का है और न ही कोई लड़की है। सब ब्रह्म हैं।' मैंने उन्हें वेदान्तके द्वारा हरा दिया था। लेकिन, आज आपने मुझे ठीक स्मरण कराया। मैं सन्ध्या नहीं करता हूँ, तो मेरे भतीजे भी नहीं करते हैं। अब आजसे मैं सन्ध्या करने लगा हूँ, तो उन सबसे भी सन्ध्या करवाऊँगा।'

आज लोग वेदान्त पढ़कर सन्ध्या-पूजा झट छोड़ देते हैं, किन्तु झूठ-कपट नहीं छोड़ते हैं। व्यापार-दूकान-रुपया नहीं छोड़ते हैं। इनको डॉक्टर-वकील-सेठ-पैसा आदि सब कुछ चाहिए; किन्तु सत्संग नहीं चाहिए। नारायण! पूछो तो आजके इन भले मानुषोंसे—

झूठ न छोड़ा, कपट न छोड़ा,
नाम जपन क्यों छोड़ दिया?

अब क्या कहें? आप जानते ही हैं कार्यालयका सर्वोच्च अधिकारी समयपर कार्यालयमें न आये और अपना कार्य

व्यवस्थित ढंगसे न करे, तो उसके नीचेके सब कर्मचारी समयपर आना छोड़ देंगे और समस्त कार्य अव्यवस्थित हो जायेगा। अतएव, यह उसका कर्त्तव्य है कि वह समयपर आये, समयपर जाये, अपना काम ठीक-ठीक करे; और, दूसरे कर्मचारियोंके आचरणमें भी समयकी मर्यादा व कार्यका अनुशासन पालन करनेकी मति-रति-गति उत्पन्न करे। इसी प्रकार, इस संसाररूपी कार्यालयमें ज्ञानी पुरुषको भी स्वयं आदर्श आचरण करना चाहिए और दूसरोंको उनके कार्योंमें लगाये रखना चाहिए। वे अज्ञ हैं। उनमें अच्छे-बुरेका विवेक नहीं है। वे एक कर्मको छोड़ेगे तो दूसरे कर्ममें लगेंगे। और, इसका कोई आश्वासन नहीं है कि वह दूसरा कर्म पहले कर्मकी अपेक्षा अच्छा ही होगा। अतः वे जिस कर्ममें लगे हैं, उन्हें उसी कर्ममें निपुण करना चाहिए। एक मनुष्य कुछ कर रहा है और उसकी क्रियामें कोई भूलको सुधार दें और उसका काम ठीक-ठीक करा दें। यदि आप वह काम ही छुड़ा देंगे तो वह कोई और काम करेगा। आप किसीको एक स्थानसे छुड़ाकर और दूसरे अच्छे काममें लगा नहीं

सकते हैं। अतएव, कर्ममें लगे अज्ञानीका काम मत छुड़ाओ। वह मूर्ख काम करता है, तो उसे करने दो। सर्वथा कुछ न करनेसे तो उल्टा-सीधा जैसे बने, वैसे ही करना अच्छा है।

अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

मनुष्यको पशुकी भाँति चेष्टा नहीं करनी चाहिए। यदि किसीको पागल कुत्ता काट ले, तो वह थोड़े दिनों पीछे कुत्तेके समान चेष्टा करने लगता है। कुत्तेके शरीरमें-से ऐसी क्या वस्तु मनुष्य-शरीरमें जाती है, जिससे मनुष्य कुत्तेके समान भूँकने-काटने लगता है? मनुष्यके मनमें जीवित रहनेका मोह बहुत प्रबल है; किन्तु, जब पशु-शरीरसे बनी वस्तुएँ मनुष्य-शरीरमें प्रवेश करेंगी, तो पशुत्वका प्रभाव मनुष्यके रक्तपर, मन-बुद्धिपर नहीं पड़ेगा, यह बात आप किस तर्कसे मानते हैं? अतएव अपने आपको सुरक्षित रखकर सबका कल्याण करना चाहिए।

'आत्मानं सततं रक्षेत् प्राणैरपि धनैरपि।'

यदि आपको प्राण और धनको खोना पड़े, इन्हें खोकर भी आप अपने आपको सतत सुरक्षित रखिये। अपने अन्त:करणको बचाइये। अपने हृदयको मत बिगाड़िये।

मनुष्यकी मृत्यु जिस स्थितिमें होती है, उसका अगला जीवन वहींसे प्रारम्भ होता है। मृत्युसे आत्मोन्नतिमें बाधा नहीं पड़ती। यदि आप माँस-हड्डीका चिन्तन करते मरेंगे तो आपका अगला जीवन माँस-हड्डीके मध्यसे ही प्रारम्भ होगा और यदि आप ईश्वरका चिन्तन करते मरेंगे, तो आपका अगला जीवन ईश्वरके सान्निध्यमें प्रारम्भ होगा। शरीर छोड़ना तो कपड़ा बदलने-जैसा है। शरीर छूटनेसे जीवनकी गतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आप धर्ममें स्थित रहकर देह-त्याग करेंगे, तो आगे आप धर्मिष्ठ होंगे और यदि आप अधर्ममें रहकर देह-त्याग करेंगे, तो आगे आप अधर्मी बनेंगे—पापी व दु:खी बनेंगे। अधर्मका फल है—राग-द्वेष, छल-कपट, अशान्ति-दु:ख। अत: *'स्वधर्मे निधनं श्रेय:।'* अपने धर्मपर स्थित रहते मरना श्रेयस्कर है। परधर्म भयदायक है। *'परधर्मो भयावह:।'* परधर्ममें कभी नहीं जाना चाहिए। स्वधर्ममें निधन भी श्रेयस्कर है।

इस प्रसंगमें यह जान लेने योग्य है कि अधर्म एक कँटीला वृक्ष है और उसमें पाँच शाखाएँ हैं। ये पाँच शाखाएँ हैं—विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल। आइये! अब इन पाँच शाखाओंपर दृष्टिपात करें।

विधर्म—*'धर्मबाधो विधर्मः स्यात्'* जिस धर्मसे दूसरेके धर्ममें बाधा पड़े वह विधर्म है। आपका मन है—'स्वामीजीको माला पहना दें।' यह तो धर्म है। अब यदि माला पहनाने आनेमें श्रोताओंको पैर लगता है और उनके श्रवणमें बाधा पड़ती है, तो माला पहनाना धर्म नहीं है, अपितु विधर्म है।

परधर्म—*'परधर्मोऽन्यचोदितः।'* जो आज्ञा दूसरेके लिए दी गयी है, वह उससे भिन्नके लिए परधर्म है। दूसरेके लिए दी गयी आज्ञा अपने लिए धर्म नहीं होती। एक व्यक्तिको सेवाका कोई काम बतलाया। दूसरे व्यक्तिने कहा—'यह काम मैं करूँगा, वह नहीं करेगा।' यह परधर्म है। देशमें शत्रुसे युद्ध चल रहा हो और उस समय किसान, व्यापारी, मजदूर, उद्योगपति, इत्यादि सब अपना-अपना काम त्यागकर युद्धभूमिमें पहुँच जायें तो सैनिकोंको रोटी कहाँसे मिलेगी?

सैनिकके लिए युद्ध धर्म है; किन्तु, यदि अध्यापक पाठशाला छोड़कर युद्धभूमिमें चले जायें, तो देशकी अगली पीढ़ी अशिक्षित रह जायेगी। अतः सबको स्वधर्मपर स्थिर रहना चाहिए। परधर्ममें कभी नहीं जाना चाहिए। परधर्म भयावह है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके गुरुजी श्रीगोलवलकरजी वृन्दावन आये थे। मैंने श्रीभूदेव शर्माके द्वारा उनसे पूछवाया—'क्या हम सब भी लाठी उठायें?' उनका उत्तर आया—यदि आप सबको लाठी उठानी पड़ेगी, तो हम किसलिए हैं? जब हमारे धर्म-नेता लाठी उठाकर मैदानमें जायेंगे, तब हमारा क्या उपयोग है? हम तो संत-महात्माओं तथा धर्मकी रक्षाके लिए ही लाठी लिये हैं। क्षत्रिय—सैनिकसे भिन्नके लिए लाठी उठाना—युद्धके मैदानमें जाना परधर्म है।

आभास—शास्त्रमें ब्राह्मणको दान देनेका वर्णन है। ग्रहण, संक्रान्ति, अक्षय नवमी आदिको दान देनेकी प्रशंसा है। ऐसे समय ब्राह्मणको दान देना धर्म है; किन्तु, लोग तो अपने रसोइयेको ही दान दे देते हैं। यह धर्म नहीं है, धर्माभास है। दान तो विद्याजीवी, तपोजीवीके लिए है। मित्र या नौकरको दान देना दानाभास है—धर्माभास है।

उपमा—'अमुकने ऐसा किया था, अतः हम भी ऐसा करते हैं।' इस प्रकार उपमा भी अधर्मकी ही शाखा है। अधर्मको देखे-समझे बिना, केवल दृष्टान्त देकर धर्मका निर्णय कर लेना धर्म नहीं है।

छल—एक सज्जनने कहा—'हम आपके लिए स्वास्थ्यकी प्रार्थना करने माधवबागके मन्दिरमें जाना चाहते हैं।' वहाँ उन्होंने किसी मित्रको मिलनेके लिये बुला रखा था। वस्तुतः उन्हें अपने मित्रसे मिलनेके लिए मन्दिरमें जाना था। अतः उनका प्रार्थना करने जाना छल है। यदि आप बाहरसे प्रणाम करते हैं, किन्तु, भीतर मनमें आदर नहीं, अपितु अपमान करनेकी इच्छा है, तो आप छल करते हैं। यदि आप बाहरसे स्तुति करते हैं; किन्तु, भीतर मनमें प्रशंसा नहीं अपितु निन्दा है, तो आप छल करते हैं। भीतर कुछ है और बाहर कुछ और ही है—यह छल है।

'अधर्मवत् त्यजेत्।' अधर्मकी उपर्युक्त कथित पाँच शाखाओंको अधर्मके समान ही त्याग देना चाहिए।

श्रुति कहती है—*'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।'* 'ऐसे ऋषि हुए हैं, जिन्होंने धर्मका साक्षात्कार किया है।' उन्होंने धर्मको बनाया नहीं। पहलेसे विद्यमान धर्मका साक्षात्कार किया है। एक धर्म मेघ समाधि होती है। योग-दर्शनमें इस-धर्मकी वर्षा करनेवाली समाधिका उल्लेख है।

स्वधर्म क्या है? सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप धर्मका प्रकाश जीवनमें हो—यह स्वधर्म है। आप सत्स्वरूप हैं, अतः स्वास्थ्य ठीक रखना धर्म है। आप चित्स्वरूप हैं, अतः बुद्धि ठीक रखना धर्म है। आप आनन्द-स्वरूप हैं, अतः प्रसन्न रहना धर्म है। जीवनमें एकत्व आना अद्वय आत्म-स्वरूपानुरूप है।

'मैं हूँ' यह प्रत्यक्ष अनुभव है। अपनी सत्ताको स्थित रखने और स्वस्थ रखनेके लिए जो क्रिया आवश्यक है, वह स्वधर्म है। इसीलिए भगवान्‌ने कहा—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(गीता ६.१७)

'उपयुक्त आहार एवं आचरण, कर्मोंमें उपयुक्त चेष्टा, उपयुक्त सोना-जागना रखकर जो कर्मयोग करता है, उसका कर्मयोग दुःखनाशक होता है।'

एक महात्मा कहते थे—'जो अपने शरीरको ही ठीक नहीं रख पाता, वह अपने मनको कैसे ठीक रखता होगा? आप अपने भोजन-आचरण, क्रिया-कलाप, जागरण-शयनसे ही ऐसे स्वस्थ रहें कि 'आपका स्वास्थ्य संन्यासमूलक रहे, संग्रहमूलक न रहे।' एक मनुष्य कहता है।—'खीर खानेसे समाधि लगती है।' दूसरा कहता है—'उपवास करनेसे समाधि लगती है।' इनमें आपका मन किधर जाता है? यह कसौटी है। यदि आपका मन भोग-प्रधान है, तो आप खीर खानेके पक्षमें होंगे और यदि आपका मन वैराग्यप्रधान है, तो आप व्रतके पक्षमें होंगे। भोग वासना-पूर्तिमें अग्रसर करता है और व्रत निवृत्तिमें लगाता रहता है। यदि आप निवृत्ति का स्वाद चाहते हैं, तो समाधि लगेगी और यदि आप प्रवृत्तिका स्वाद चाहते हैं, तो विक्षेप उठेगा। जागरण, शयन कर्ममें भी धर्म होता है। स्वास्थ्यके लिए प्रातः उठना और उठकर महत्तमका स्मरण करना उपयोगी है।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।

'मैं प्रातः हृदयमें स्फुरित होते सच्चिदानन्द, परमहंसोंकी गति, तुरीय आत्मतत्त्वका स्मरण करता हूँ, इसका नाम धर्म है।'

भगवान्का बहुत बड़ा उपहार हमें बुद्धिके रूपमें प्राप्त है। अतः अपनी बुद्धिको ठीक रखना धर्म है। यह बुद्धि कामधेनु-कल्पवृक्ष है। जिस बातसे यह बिगड़ती है, वह अधर्म है। भेदबुद्धि अधर्म है। बुद्धि अद्वैतमें सोती है, अतः जागनेपर अद्वैतका त्याग करे तो धर्मच्युत होगी। व्यवहारमें भी राग-द्वेषकी जननी भेदबुद्धि अधर्म करानेवाली हो जाती है। अतएव इसे ठीक रखनेके लिए स्वाध्याय, सत्संग, एकाग्रता, आत्मचिन्तन करना धर्म है। इनसे बुद्धि स्वस्थ रहती है।

हमारा स्वरूप आनन्द है। अतः हमारा मन निर्मल होना चाहिए। राग-द्वेष, छल-कपट, अशान्ति-दुःख तो अधर्मका फल है। धर्मका फल है—शान्ति, सुख, प्रसन्नता!

सच्चिदानन्द अद्वितीय आत्मस्वरूप धर्मका प्रकाश जीवनमें होना स्वधर्म है। स्वरूपानुरूप धर्म वह है जिसमें स्वास्थ्यके अनुरूप आहार और आचरण हो, बुद्धिके अनुरूप अध्ययन और चिन्तन हो, आनन्दके अनुरूप स्थिति हो, आनन्द पराधीन न हो और जीवनमें एकत्व हो।

जीते रहो और जीने दो। आत्महत्या मत कीजिये और दूसरेको मत मारिये। यह आपका सद्धर्म है। समझदार बनो और समझदार रहने दो। मूर्ख मत बनिये और न दूसरेको बनाइये। स्वयं ठगे मत जाइये और दूसरेको ठगिये मत। यह आपका चिद्धर्म है। सुखी रहो और सुखी रहने दो। स्वयं दुःखी मत रहिये और दूसरेको दुःखी मत कीजियें। दूसरे के घरमें आग लगायेंगे तो आपके घरमें भी उसकी चिनगारी अवश्य पड़ेगी। स्वयं प्रसन्न रहिये और दूसरेको सताइये मत। यह आपका आनन्द धर्म है।

जो अनात्मा है, उसका धर्म भयप्रद है। शरीर मरता है। यदि आप अपनेको शरीर स्वीकार करेंगे, तो जीवनमें मृत्युका भय आयेगा। शरीर जड़ है। यदि आप अपनेको शरीर मानेंगे,

तो अपनेमें जड़ता आयेगी। शरीर विकारी है, घटता-बढ़ता है। यदि आप अपनेको शरीर स्वीकार करेंगे, तो आपको रोग, बुढ़ापे आदिका भय होगा। शरीर अनित्य-जड़-विकारी-दुःखरूप है। आप अपनेको शरीरसे पृथक् आत्मा मानो-जानो-अनुभव करो। आप अपने नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त ब्रह्म स्वरूपमें स्थित रहिये। सत्य-ज्ञान-अनन्त ब्रह्मस्वरूपकी अनुभूति ही आपके लिए श्रेयस्कर है।

देखो! प्रकृतिके अनुसार सहज चेष्टा होती है। राग-द्वेषके वश होकर मनुष्य धर्माधर्म करता है। व्यक्ति और वस्तुमें ही तो राग-द्वेष होता नहीं। राग-द्वेष तो अपने गुण, धर्म, स्वभावादिमें भी होता है। अतः प्रश्न उठता है कि अमुक वर्णाश्रम-धर्मके पालनका ही आग्रह क्यों किया जाये? क्यों न जो उत्तम धर्म, उत्तम क्रिया हो, वही किया जाये? लेकिन, मेरे भाई! जिसे श्रेष्ठ मानकर पकड़ रहे हो, उसे रागके कारण ही तो श्रेष्ठ मान रहे हो? जिसे कनिष्ठ मानकर छोड़ रहे हो, उसे द्वेषके कारण ही तो निकृष्ट मान रहे हो और छोड़ रहे हो? ऐसा करना ठीक नहीं है। पूर्व-पूर्व

संस्कारसे जो वर्ण-आश्रम धर्म प्राप्त हुआ है, जो देश-जाति कुल—प्राप्त हुआ है और उसका जो धर्म प्राप्त हुआ है, वह सहज प्रकृति है। उसे त्यागनेसे विफलता मिलेगी। निसर्गप्राप्त प्रकृतिका नियन्त्रण नहीं हो सकता। अतः सहजप्राप्त स्वधर्मका आचरण ही श्रेष्ठ है। परधर्म भयावह है। परधर्ममें कभी नहीं जाना। 'अपना अल्पगुण वाला धर्म भी भली प्रकार आचरित दूसरेके धर्मसे श्रेष्ठ है। अपने धर्माचरणको करते हुए मरना भी कल्याणकारी है; किन्तु दूसरेका धर्म भयप्रद है।'

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(गीता ३.३५)

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

६

तीर्थयात्रा

नारायण! नारायण !! नारायण!!! नारायण!!!!

'तीर्थ'का अर्थ है— '*तीर्यते अनेन*'—जिसके द्वारा मनुष्य इस संसार-सागरसे पार उतरता है। तीर्थयात्रा भी मनुष्य-जीवनका एक आवश्यक कर्त्तव्य है। मानव-जीवनके आवश्यक कर्त्तव्योंके अन्तर्गत पृथिवीका परिभ्रमण, जलमें स्नान, अग्निकी आराधना, और प्राण व वायुकी, हृदयाकाश और महाकाशकी तथा अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य व प्रपञ्चावच्छिन्न चैतन्यकी एकताका बोध भी निहित है। इस परिच्छिन्नको पूर्णसे एक करनेके लिए तात्त्विक दृष्टिकी आवश्यकता होती है।

परमात्मा कहीं सातवें आसमानमें छिपा हुआ नहीं है। पृथिवी, जल, अग्नि वायु, आकाश, सूर्य चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारोंके रूपमें परमात्मा ही है। वैदिक सनातन धर्म सर्व-रूपमें परमात्माका अनुभव करता है।

'त्वं स्त्री, त्वं पुमानसि, त्वं कुमार, त्वं कुमारी। जीर्णो दण्डेन वंचसि। युवा सुवासा परिवीतयागात्सौश्रेयान् भवति जायमानः।'

परमात्मा ही स्त्री-पुरुष, कुमारी-कुमारके रूपमें प्रकट हो रहा है। वही बुड्ढेके रूपमें लठिया टेकता हुआ चलता है। वही नवयुकके रूपमें अत्यन्त सुन्दर वस्त्र धारण किये, सत्पुरुषोंसे घिरा हुआ, सुशोभित हो रहा है। आप सर्वरूपमें परमात्माका अनुभव कीजिये।

वैदिक सनातन धर्म सर्वको परमात्मामें देखता है। पार्थिव लिंग—पृथिवीके शिवको हाथपर बनाकर पूजता है। कलशमें जलको स्थापित करके पूजता है। अग्निमें हवन करके पूजता है। प्राणसे वायुको एक करके पूजता है। *'आकाशकोष-तनवोतनवः महानतः'* के रूपमें रहता है। आप सबको परमात्मारूपमें अनुभव कीजिये।

वैदिक सनातन धर्मकी दृष्टिमें सर्व परमात्मा है। कार्य-कारण, विशेषण-विशेष्य, परिणामी-विवर्ती भावसे और स्वरूपसे सर्व परमात्मा है। यह एक विशेष बात है कि वैदिक सनातन धर्ममें सर्वके अभिन्न निमित्तोपादानकारणके रूपमें परमात्माको जानते और मानते हैं। साक्षात् अपरोक्ष रूपसे यह जाँनते हैं कि परमात्माके अतिरिक्त और कोई नहीं है। परमात्मामें प्रकट-स्थित-लीन होनेवाला यह सम्पूर्ण प्रपञ्च ब्रह्म-रूप है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म। तज्जलानिति शान्त उपासीत्।
तज्जं च तल्लं च तदन्नं च।'
सद्धीदम् सर्वम्, चिद्धीदम् सर्वम्, ब्रह्मैवेदं सर्वम्।
सह एवेदं सर्वम्, आत्मैवेदं सर्वम्, अहमेवेदं सर्वम्।

क्या आप दुनियाका कोई एक ऐसा मजहब बता सकते हैं जो सर्वरूपमें या विवर्ती अभिन्ननिमित्तोपादान कारण रूपमें परमात्माको जानता और मानता हो?

वासुदेवः सर्वम् स महात्मा सुदुर्लभः।

परमात्मा भूः भुवः स्वः है। परमात्मा भूर्लोक, भुवार्लोक, स्वर्लोक है। यह सर्वात्मभाव, सर्वात्मबोध वैदिक सनातन

धर्मकी विशेषता है। आप यह साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्मानुभूति कीजिये।

वैदिक सनातन धर्मका यह विशाल दृष्टिकोण अत्यन्त अद्भुत है। सबमें परमात्मा है। परमात्मामें सब है। सब परमात्मा है। इस विलक्षण उपनिषद् सिद्धान्तको श्रीकृष्णने युद्धभूमिमें बाँसुरी बजाकर गीताके रूपमें प्रकट किया है। मनुष्यके हृदयको शुद्ध करनेवाली यह बात आजके विज्ञानमें नहीं है। विज्ञान रूई साफ कर सकता है; सीमेन्ट बना सकता है; रॉकेट छोड़ सकता है, लेकिन मानव हृदयको शुद्ध नहीं कर सकता है। देश-विदेशमें परिभ्रमण करनेवाले आजके बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग अपने खानपानमें सर्वथा स्वच्छन्द और लापरवाह हो गये हैं। चाहे कुछ भी खाने-पीनेके लिए ही इन लोगोंका जन्म हुआ है।

सजग्धी सपीती प्रचारणाय कृतावतारः।
नमःकलहैः धर्मकलहैः गृहीतविग्रहाय॥

इस कलियुगको नमस्कार है, जो धर्मके लयके निमित्त ही आया है।

वैदिक सनातन धर्म इतना व्यापक है कि आप देखकर आश्चर्य करेंगे। आप तीर्थयात्रा, गंगा-स्नान, भगवत्मूर्ति-दर्शनसे इतने उदासीन क्यों है? क्या आप इतने आलसी हैं कि तीर्थयात्रा, गंगा-स्नान, भगवन्मूर्तिदर्शन हेतु घूम-फिर नहीं सकते हैं? आप कम-से-कम अपने राष्ट्रके बारेमें तो जानकारी प्राप्त कीजिये। आप गंगोत्रीका गंगाजल लेकरके रामेश्वरपर चढ़ाइये और केरलकी सुपारी-पूगीफल लेकरके बद्रीनाथपर चढ़ाइये। आप जगन्नाथपुरीका बेंत लेकरके हिमालयकी यात्रा कीजिये और द्वारिकापुरीसे कन्याकुमारीकी यात्रा कीजिये। आप भारत खण्डके उत्तरी-दक्षिणी पूर्वी-पश्चिमी भागोंके तीर्थों, धर्मों, भगवन्मूर्तियोंकी विशेषताओंको जानिये और समझिये। आपको वैदिक सनातन धर्मका अद्भुत दर्शन प्राप्त होगा। वैदिक-धर्मकी उदीर्ण-दृष्टिमें आपकी संकीर्ण-दृष्टिका लोप हो जायेगा। परिच्छिन्न दृष्टिको पूर्ण दृष्टिसे एक करनेके लिए तात्त्विकी दृष्टिकी अनिवार्य आवश्यकता है। तीर्थाटनसे विभिन्न प्रदेशों सम्बन्धी ज्ञान-संवर्धनके साथ-ही-साथ प्रादेशिक सामञ्जस्य व एकताका

भाव आता है। तीर्थाटनसे मनुष्यके मनोभावोंमें उदारता आती है। जीवनको पूर्णताकी ओर अग्रसर करनेके लिए आप हिमालयसे कन्याकुमारी पर्यन्त और जगन्नाथपुरीसे द्वारिकापुरी पर्यन्त पृथिवीकी परिक्रमा कीजिये। तीर्थोंमें जाकर तीर्थोंके जलसे स्नान कीजिये। भगवन्मूर्त्तियोंका दर्शन कीजिये। भगवान्‌की आराधना कीजिये। भगवत्साक्षात्कार कीजिये। भगवत्प्राप्तिके दिव्य सुखका अनुभव प्राप्त कीजिये।

यदि आपको यह अनुभव होता है कि परमात्मा सर्वत्र है और हमें आत्म-रूपसे प्राप्त है, यदि आप अपने साक्षात् अपरोक्ष परब्रह्म परमात्म-स्वरूपमें परमानन्द व परमतृप्तिका अनुभव करते हैं, तो कोई थोड़े ही जबरदस्ती आपको पृथिवीका परिभ्रमण कराता है या पर्वतपर चढ़ाता है या गंगाजीमें डुबोता है या समुद्रमें फेंकता है या भगवन्मूर्तियोंका दर्शन कराता है। लेकिन, भौतिक दृष्टिसे, आपको कम-से-कम अपने राष्ट्रके सम्बन्धमें इतना कतराना नहीं चाहिए। आपकी कम-से-कम अपने देशमें घूम-फिरकर उसके विभिन्न भागोंके अद्भुत रूपोंका दर्शन करना चाहिए और

उनकी विभिन्न भौतिक विशेषताओंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। देशाटन-तीर्थाटन भी आपके जीवनके अनेक आवश्यक कर्त्तव्योंमें-से एक आवश्यक कर्त्तव्य है। आपको पूरा ईमानदारीके साथ अपने इस अवश्य कर्त्तव्य कर्मका अनुष्ठान करना चाहिए।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

□

७

भक्तिकी महिमा

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

अनेक कथाओंमें वर्णन मिलता है कि जब-जब भी देवताओंके समक्ष कोई कठिनाई या सङ्कट आया तो भगवान्ने उनकी सहायता की। प्रश्न यह उठता है कि जो भगवान् सबमें विद्यमान हैं, सबके प्रति समभाव रखते हैं, वे देवताओं की सहायता क्यों करते हैं? क्या यह उनका पक्षपात प्रतीत नहीं होता? सच पूछो तो भगवान्में कोई विषमता नहीं है, कोई भेदभाव नहीं है, किन्तु यह भक्तिकी ही महिमा है कि वह भगवान्को भी पक्षपाती-सा प्रतीत करा देती है।

भगवान्की कृपा या करुणाके पात्र देवता, ब्राह्मण, विद्वान् या आचार्य ही नहीं होते, निर्मल मनसे भक्ति करनेवाला

चाण्डाल भी उनकी कृपाका पात्र हो सकता है। भक्ति तो जाति, काल, स्थिति, सबसे परे और सबके लिए सुगम है। भगवान् देवता या दैत्य किसीके प्रति पक्षपात नहीं करते किन्तु जिसके हृदयमें भक्ति होती है, अन्योंको वह ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् उसके प्रति पक्षपात कर रहे हैं। देववर्ग इसका स्पष्ट उदाहरण है। देवताओंपर भगवान्की कृपा इसलिए है कि उनके मनमें भगवान्के प्रति आस्था, विश्वास और भक्ति है। वे अपनी शक्तिपर गर्व न कर भगवान् ही का आश्रय लेते हैं, उन्हींकी शरणमें जाते हैं, उन्हींपर निर्भर करते हैं, फिर भगवान् उनकी सहायता कैसे न करें? देवताओंके अतिरिक्त भी जिस किसीने भगवान्को हृदयमें बसाया, उन सबको भगवान्की कृपा प्राप्त हुई।

भगवान्की भक्तिसे, उनको अपने हृदयमें बसानेसे सब गुण अपने आप वहीं चले आते हैं, वे सब विपत्तियाँ व दुर्वासनाएँ दूर हो जाती हैं और सर्वत्र भगवान्का रूप दिखायी देने लगता है। इसलिए प्रह्लादको कण-कणमें, समुद्रमें, पर्वतमें, अग्निमें, खम्भेमें सर्वत्र भगवान्का भान हो रहा था।

तभी उसे इनसे कोई भय नहीं लगा। और जब हिरण्यकशिपुने यह पूछा कि बता अब तेरे भगवान् कहाँ है ? इस खम्भेमें भी हैं। तब प्रह्लादने अपने सच्चे और दृढ़ विश्वाससे कहा कि वे सर्वत्र हैं, इस खम्भेमें भी हैं और उस खम्भेमें-से ही नृसिंह भगवान् प्रकट हो गये तथा प्रह्लादकी न केवल रक्षा की बल्कि उसे राजसिंहासन और कीर्तिके साथ मोक्ष भी प्रदान किया।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

❑

आराधना

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

इस संसारमें आकर हम अपने अस्तित्वके लिए बहुतोंके प्रति कृतज्ञ हैं। माता-पिताने हमें जन्म दिया, ऋषियोंने ज्ञान दिया, देवोंने इन्द्रियोंको शक्ति दी; हमारे अन्दर इनके ऋणोंसे मुक्त होनेकी भावना होनी चाहिए, दृष्टि होनी चाहिए; हमें इनके प्रति कृतघ्न नहीं होना चाहिए। पृथिवी, जल, वायु, आकाश और अग्निके बिना हमारा जीवन नहीं चल सकता; ये क्षण-क्षणमें हमारे जीवनके काम ही नहीं आते बल्कि इनसे हमारा जीवन ही निर्मित होता है; इनके प्रति भी हमें आदरका भाव रखना चाहिए और कृतघ्न नहीं होना चाहिए। इस प्रकार, चेतन जीवको अपने उत्स या उद्गम ईश्वरसे भी सम्बन्ध रखना चाहिए; ईश्वरके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए

और उसकी आराधना और भक्ति करनी चाहिए। यदि हमारा हृदय आराधना या भक्तिके भावसे पूर्ण है तो ईश्वरको देखा भी जा सकता है।

भक्तिके लिए पात्रता अर्जित करने हेतु वेद, शास्त्रके अनुसार आचरण करते हुए इन्द्रियोंपर नियन्त्रण स्थापित करना चाहिए; राग द्वेषादिसे मुक्त करके बुद्धिको सात्त्विक बनाना चाहिए; और उसके पश्चात् मनको एकाग्र करना चाहिए। ऐसा करनेपर निष्काम भक्ति प्राप्त होती है। निर्गुण भक्तिके लिए भगवान्‌के गुणानुवादका श्रवण करना चाहिए। इसमें भगवान् शब्दके गरुड़पर चढ़कर आते हैं और श्रवण मार्गसे हृदयमें प्रवेश करते हैं। भक्तिका सबसे सरल प्रकार है सुगम भक्ति। इसमें सबको कुछ देनेकी भावना होती है; पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नर-नारी सबके प्रति समभाव व सद्भाव होता है; सबके प्रति मैत्री-पूर्ण व्यवहार होता है; और सबके अन्दर उसी परमात्माका वास समझते हुए, किसीसे कुछ भेद न रखकर, अभेद दृष्टि होती है।

राऽऽऽऽम! राऽऽऽऽम!! राऽऽऽऽम!!! राऽऽऽऽम!!!!

□

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

वेदान्त

मुण्डक सुधा	110.00
माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण) भाग-1	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण) भाग-2	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अद्वैत प्रकरण) भाग-3	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अलात शान्ति) भाग-4	100.00
ईशावास्य प्रवचन	20.00
ईशानुभूति (ईशावास्योपनिषद् के आधार पर)	40.00
केनोपनिषद्	70.00
कठोपनिषद् (दो भागोंमें)	250.00
बृहदारण्यकोपनिषद्	60.00
श्वेताश्वतरोपनिषद्	150.00
छान्दोग्य-बृहदारण्यक एक दृष्टिमें	10.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 1	100.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 2	75.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 3	60.00
दृग दृश्य विवेक	100.00
विवेक कीजिये (विवेक चूड़ामणि प्रवचन)	100.00

अपरोक्षानुभूति प्रवचन	80.00
वेदान्त बोध	60.00
साधना और ब्रह्मानुभूति	70.00
महाराजश्रीकी डायरीसे	6.00
आनन्द सूत्र	15.00
आनन्दानुभव	20.00
जीवन्मुक्ति विवेक	75.00
अष्टावक्रगीता	25.00
अष्टावक्रगीता प्रवचन	80.00
मिथ्यात्व ज्ञान	20.00
ध्यान और ज्ञान	90.00

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता–रस–रत्नाकर (सम्पूर्ण गीता)	130.00
सांख्ययोग (गीता अध्याय–2)	200.00
कर्मयोग (गीता अध्याय–3)	60.00
ध्यानयोग (गीता अध्याय–6)	150.00
ज्ञान–विज्ञान–योग (गीता अध्याय–7)	130.00
अक्षर ब्रह्मयोग (गीता अध्याय–8)	50.00
राजविद्या राजगुह्ययोग (गीता अध्याय–9)	90.00
विभूतियोग (गीता अध्याय–10)	175.00

भक्ति योग (गीता अध्याय-12)	90.00
ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (गीता अ.-13)	120.00
पुरुषोत्तमयोग (गीता अध्याय-15)	120.00
दैवी-सम्पदयोग (गीता अध्याय-16)	50.00
दैनिक जीवनमें गीता	60.00
योगः कर्मसु कौशलम्	20.00
मामेकं शरणं ब्रज	20.00
गीतामें भक्तिज्ञान समन्वय	30.00
गीतामें मानवधर्म	25.00
वासुदेवः सर्वम्	10.00
मया ततमिदं सर्वं (मेरा सब ताना-बाना)	25.00
गीता दर्शन (तीन भागोंमें)	600.00

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

विपुल 28/16 बी. जी. खेरमार्ग, मालाबार हिल, मुम्बई-400006

फोन : (022) 23682055, मो. : 09619858361

● शाखा कार्यालय ●

श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय, आनन्द कुटीर, मोतीझील

वृन्दावन-281121

फोन : (0565) 2913043, 2540487, मो. : 09837219460

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति • सत्साहित्यप्रकाशनट्रस्ट •

आनन्द कानन प्रेस
टेढ़ीनीम, वाराणसी • फोन : 2392337